आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 अप्रेल, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 04 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 अप्रेल, 2014★ चैत्र, 2071

ISSN
2249-2011

हिन्दी मासिक

जिनवाणी

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
जयपुर

मंगल-मूल, धर्म की जननी, शाश्वत सुखदा कल्याणी।
द्रोह-मोह-छल-मान-मर्दिनी, फिर प्रगटी यह 'जिनवाणी'।।

भारतवर्ष का स्वर्णतीर्थ

करो शाकाहार का प्रचार
होगा अहिंसा का प्रसार
इसी से खुलेंगे केवल
विश्वशांति के महाद्वार...

परिपूर्ण है आहार शाकाहार......
मन मैं रहे सदा शुद्ध विचार
खुलेंगे कल्याणकारी विश्वशांति के द्वार...
सफल जीवन होगा सफल साकार

रतनलाल सी. बाफना ज्वेलर्स

स्वर्णतीर्थ - औरंगाबाद	स्वर्णतीर्थ - जळगांव (H.O.)	स्वर्णमॉल - जळगांव	स्वर्णतीर्थ - नाशिक
0240-2244520	0257-2223903	0257-2241353	0253-2315644

जहाँ विश्वास ही परम्परा है   मानवीय आहार शाकाहार

www.malhar.org

2903
R 25/4/14

Jai Guru Heera *Jai Guru Hasti* *Jai Guru Maan*

।। जैनं जयति शासनम् ।।

दान से पुण्य होता है, पर संयम से कर्मों की निर्जरा होती है।
दान हृदय की सरलता है, पर संयम हृदय की शुद्धता है।।

DP Exports is leading Indian firm specializing in import, export and manufacture of diamonds and jewellery. We offer a wide range of rough diamonds, along with a specialization in the field of manufacturing polished diamonds and jewellery.

timeless jewels
unmatched quality
flawless craftsmanship

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

Dharamchand Paraschand Exports

1301, Panchratna, Opera House, Mumbai - 400 004. India.
t: +91 22 2363 0320 / +91 22 4018 5000
f: +91 22 2363 1982 email : dpe90@hotmail.com

।। महावीराया नमः ।।

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा जय गुरु मान

जिस दिन श्रद्धा जग जायेगी, अनमोल-दुर्लभ परम अंग रूप मानव जीवन को समर्पण करते देर नहीं लगेगी। श्रद्धा है तो प्राण अर्पण भारी नहीं लगेगा।

-आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments From :

S. .D. GEMS & SURBHI DIAMONDS

Prakash Chand Daga

Virendra Kumar Daga (Sonu Daga)

202, Ratna Deep, Behind Panchratna, 78- J.S.S. Road, Mumbai- 400 004
Ph. : (O) 022-23684091, 23666799 (R) 022-28724429
Fax : 022-40042015 Mobile : 098200-30872
E-mail : sdgems@hotmail.com

Jai Guru Heera *Jai Guru Hasti* *Jai Guru Maan*

व्यसनी से उसी प्रकार बचना चाहिये, जिस प्रकार छूत के रोगी से बचा जाता है।

- आचार्य श्री हीरा

With Best Compliments from :

Basant Jain & Associates, Chartered Accountants
BKJ & Associates, Chartered Accountants
BKJ Consulting Private Limited
Megha Properties Private Limited
Ambition Properties Private Limited

601, Dalamal Chambers, New Marine Lines, Mumbai-400020

बसंत के. जैन

अध्यक्ष : श्री जैन रत्न युवक परिषद, मुम्बई
ट्रस्टी : गजेन्द्र निधि ट्रस्ट

Tel. : (O) 22018793, 22018794 (R) 28810702

जिनवाणी

हिन्दी-मासिक

संरक्षक
अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ
घोड़ों का चौक, जोधपुर (राज.), फोन-2636763

संस्थापक
श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़

प्रकाशक
विनयचन्द डागा, मंत्री-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
दुकान नं. 182-183 के ऊपर, बापू बाजार,
जयपुर-302003(राज.)
फोन-0141-2575997, फैक्स-0141-2570753

प्रधान सम्पादक
प्रो. (डॉ.) धर्मचन्द जैन
सामायिक-स्वाध्याय भवन, प्लॉट नं. 2,
नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन : 0291-2626279
E-mail : jinvani@yahoo.co.in
Website: www.jinvani.net

सह-सम्पादक
नौरतन मेहता, जोधपुर
डॉ. श्वेता जैन, जोधपुर

भारत सरकार द्वारा प्रदत्त
रजिस्ट्रेशन नं. 3653/57
डाक पंजीयन सं.-RJ/JPC/M-21/2012-14
ISSN 2249-2011

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

इह कामाणियट्टस्स,
अत्तट्ठे अवरज्झइ।
सोच्चा नेयाउयं मग्गं,
जं भुज्जो परिभस्सइ।।
-उत्तराध्ययन सूत्र, 7.25

जग में जो कामनिवृत्त नहीं,
उसका आत्मार्थ न हो पाता।
भवतारक पथ को सुनकर भी,
जो बार-बार विचलित होता।

अप्रेल, 2014
वीर निर्वाण संवत्, 2540
चैत्र, 2071

वर्ष 72 अंक 4

सदस्यता शुल्क

त्रिवार्षिक : 250 रु.	स्तम्भ सदस्यता : 21000/-
आजीवन देश में : 1000 रु.	संरक्षक सदस्यता : 11000/-
आजीवन विदेश में : 12500 रु.	साहित्य आजीवन सदस्यता- 4000/-

एक प्रति का मूल्य : 10 रु.

शुल्क/साभार नकद राशि 'जिनवाणी' बैंक खाता संख्या SBBJ 51026632986
IFSC No. SBBJ 0010843 में जमा कराकर जमापर्ची (काउन्टर-प्रति) अथवा ड्राफ्ट भेजने का पता
'जिनवाणी', दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.)
फोन नं.0141-2575997, 2571163, फैक्स : 0141-2570753, E-mail:sgpmandal@yahoo.in

मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर, फोन- 0141-2562929

नोट- यह आवश्यक नहीं कि लेखकों के विचारों से सम्पादक या मण्डल की सहमति हो।

विषयानुक्रम

सम्पादकीय-	धर्मानुष्ठान के विविध रूप	-डॉ. धर्मचन्द जैन	7
अमृत-चिन्तन-	आगम-वाणी	-संकलित	11
	वाग्वैभव(24)	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	12
प्रवचन-	क्रूरता का यह नग्न ताण्डव क्यों? (2)	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी	13
	जीवन के साथ सीखें मरण की कला भी	-आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी	18
अध्यात्म-लेख-	सुख-दुःख का जनक कौन? (2)	-श्री कन्हैयालाल लोढ़ा	23
शोधालेख -	जैन दर्शन का नयसिद्धांत	-प्रो. सागरमल जैन	29
	व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष के सन्दर्भ में वेदनीय कर्म	-डॉ. दिलीप धींग	44
प्रासङ्गिक -	भगवान महावीर का जीवन	-डॉ. हेमलता जैन (ललवाणी)	37
अंग्रेजी-स्तम्भ-	**The Unique and the Universal Dimensions of Jainism**	*-Dr Priyadarshana Jain*	52
धारावाहिक-	लग्न की वेला (2)	-आचार्य श्री उमेशमुनि जी 'अणु'	59
परिवार-स्तम्भ -	सुधरे नारी का परिधान	-श्री युगराज जैन	68
प्रेरक-प्रसंग-	पदरज का प्रभाव	-श्री हितेष जैन	72
	ईमानदारी आज भी जीवित है	-श्री आर. प्रसन्नचन्द चोरडिया	73
अभिव्यक्ति-	**Experience in Chennai Vitaraga Dhyana Sadhana Shivir**	-संकलित	74
	अगम चेतना की घाटी	-श्रीमती अभिलाषा हीरावत	79
	मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' की विशेषताएँ	-श्री सुरेशचन्द्र धींग	80
	वीतराग-ध्यान की आराधना	-श्रीमती सुनीता नरेन्द्र डागा	82
युवा-स्तम्भ -	हे जीव! क्षण भर भी प्रमाद मत कर	-श्री दुलीचन्द जैन	77
स्वास्थ्य-विज्ञान -	भोजन और स्वास्थ्य	-डॉ. चंचलमल चोरडिया	84
बाल-स्तम्भ -	प्रसन्नता का रहस्य	-श्री स्वेट मार्डेन	95
कविता/गीत-	प्रभो महावीर! अब उजाला कीजिए	-श्री देवेन्द्रनाथ मोदी	58
	धर्म करते रहो, मुस्कुराते रहो	-श्री जशकरण डागा	71
	धार्मिक पाठशाला गीत	-श्री जितेन्द्र जैन 'प्रेक्षक'	75
	जीवन-बोध क्षणिकाएँ	-श्रद्धेय श्री यशवन्तमुनि जी	76
	शुभ चिन्तन में लगा रहे मन	-श्री मोहन कोठारी 'विनर'	81
	रहेगा अमर तुम्हारा दान	-श्री अरिहन्त चौपड़ा	83
	सोच रे मानव	-श्री चन्द्रपाल महनोत	98
	मानवता	-श्रीमती रेणू सिरोया	125
विचार-	क्षमा प्रदान की	-श्री पीरचन्द चोरडिया	28
	अनमोल सूत्र	-श्री नवरतन डागा	51
	विचार-वारिधि	-आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.	67
साहित्य-समीक्षा-	नूतन साहित्य	-डॉ. श्वेता जैन	99
समाचार विविधा-	समाचार-संकलन	-संकलित	101
परिणाम-	स्वप्निका पुस्तिका परिणाम		117
	साभार-प्राप्ति-स्वीकार	-संकलित	123

सम्पादकीय

धर्मानुष्ठान के विविध रूप

❖ डॉ. धर्मचन्द जैन

धर्म आत्मशुद्धि का साधन है। प्रायः लोग बाह्य अनुष्ठान या प्रवृत्तियों को ही धर्म समझते हैं, जबकि धर्म का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की चेतना के परिष्कार से है। उसे भीतर में धारण किया जाता है, जिससे सद्गुणों का विकास होता है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, ब्रह्मचर्य आदि सद्गुण धर्म कहे गए हैं। ये सद्गुण आत्मा में होते हैं, आत्मा के बाहर नहीं। बाह्य क्रियाएँ इन सद्गुणों को विकसित करने में यदि साधन बनती हैं, तो इन्हें उपचार से धर्म क्रिया कहा जा सकता है। किन्तु आज औपचारिक धर्म क्रियाएँ अधिक हो रही हैं, क्षमा आर्जव आदि सद्गुणों के विकास के साथ उन्हें नहीं जोड़ा जा रहा है।

धर्म के प्रति श्रद्धा होना धार्मिक होने का प्रथम चरण है। धर्म के प्रति श्रद्धा होने का आशय गहराई से समझना होगा। आज अनेक बड़े-बड़े आयोजन किए जाते हैं, उनमें देखा-देखी एवं आमंत्रण-निमंत्रण पर जनसैलाब उमड़ता है, किन्तु आत्मशुद्धि की ओर उनका कोई कदम बढ़ता भी है, इसमें सन्देह ही रहता है। मनुष्य अमूर्त की अपेक्षा मूर्त को अधिक जानता है एवं महत्त्व देता है। उसे बाह्य मूर्त क्रियाएँ अधिक आकृष्ट करती हैं। बड़े आयोजन उत्सव का रूप ले लेते हैं, जिनमें आमजन की अधिक रुचि होती है तथा वे अपने आपको धर्म से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं। किसी को धर्म-मार्ग पर प्रवृत्त करने में बड़े अनुष्ठान कदाचित् निमित्त बन सकते हैं, किन्तु इस तरह के आयोजन प्रायः धार्मिकता की अपेक्षा सामाजिकता को अधिक प्रश्रय देते हैं। लोगों से मिलना-जुलना हो जाता है। नये लोगों से परिचय बढ़ता है। सामाजिक स्तर पर एक पहचान बनती है। इस सामाजिक आयाम के अपने लाभ हैं। कइयों को अपने व्यापारिक सम्बन्ध बनाने, विवाह-सम्बन्ध करने, सम्पर्क बढ़ाने आदि का लाभ होता है। धार्मिक उत्सव सामाजिक समरसता को बढ़ाने में निमित्त बनते हैं तो यह भी व्यक्ति एवं समाज के लिए उपयोगी है, किन्तु यह धार्मिकता की इतिश्री नहीं है।

धर्म के प्रति श्रद्धा का हेतु प्रत्येक मनुष्य में अलग-अलग आधारों पर टिका होता है। कुछ लोग वास्तव में अपने सुधार के लिए धर्म-क्रियाओं से जुड़ते हैं। ऐसे लोग धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। इनकी रुचि सांसारिक भोगों में नहीं होती तथा इनके जीवन में वैराग्य झलकता है। क्रोध आदि कषाय भी उपशान्त रहते हैं। इनमें भी कुछ साधक महाव्रती तो कुछ अणुव्रती होते हैं। इन साधकों का लक्ष्य प्राणिमात्र को पीड़ा दिए बिना अपनी प्रज्ञा का विकास करते हुए पूर्व कर्म संस्कारों को विगलित कर शाश्वत दुःख-मुक्ति की प्राप्ति

होता है। ऐसे धर्मनिष्ठ मनुष्यों का जीवन स्वहित एवं परहित दोनों दृष्टियों से सार्थक होता है। ये सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय के सच्चे आराधक होते हैं। इनका किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रति न राग होता है, न द्वेष। उपाध्याय यशोविजयजी ने ऐसे धर्मनिष्ठ पुरुषों को श्रेष्ठ कोटि में रखते हुए कहा है-

सहजो भावधर्मो हि शुद्धश्चन्दनगन्धवत्।
एतद् गर्भमनुष्ठानममृतं संप्रचक्षते।।

-अध्यात्मसार, 289

अर्थात् सहज शुद्ध भावधर्म की सुगन्ध शुद्ध चन्दन की महक की भाँति सर्वत्र प्रसृत होती रहती है। इस भावधर्म से युक्त जो भी अनुष्ठान या धर्म क्रिया की जाती है, उसे अमृत अनुष्ठान अथवा श्रेष्ठ धर्मक्रिया कहा जाता है। यहाँ 'भावधर्म' शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धर्म का वास्तविक स्वरूप भावात्मक ही होता है, द्रव्य धर्म अथवा बाह्य धर्म-क्रियाएँ उसमें सहायक होती हैं। स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण, तप, दयाव्रत आदि द्रव्य क्रियाएँ जब चेतना के साथ जुड़कर भावात्मक स्वरूप को ग्रहण कर लेती हैं तो वे श्रेष्ठ कही जाती हैं। धर्म का यह स्वरूप तब तक साध्य है जब तक इसकी प्राप्ति न हो जाए। इसके प्राप्त होने पर वह मुक्ति का साधन बन जाता है।

उपाध्याय यशोविजयजी ने 17 वीं-18 वीं शती में अध्यात्मसार ग्रन्थ की रचना की थी। उसमें उन्होंने धर्म-अनुष्ठान के पाँच प्रकार निरूपित किए हैं- 1. विषानुष्ठान, 2. गरानुष्ठान, 3. अननुष्ठान, 4. तद् हेतु अनुष्ठान और 5. परम-अनुष्ठान। जब कोई श्रद्धालु आहार, उपधि, पूजा-सम्मान, ऋद्धि एवं सांसारिक उपलब्धियों की आशा से धर्म क्रिया करता है तो उसे 'विषानुष्ठान' कहा है। इसके पीछे हेतु यह प्रतीत होता है कि उस श्रद्धालु की दृष्टि धर्म के माध्यम से इहलौकिक कामनाओं की पूर्ति से सम्बद्ध होती है, वह तनिक भी अपनी चेतना के परिष्कार की बात नहीं सोचता। उसका यह चिन्तन उसे सम्यक्त्वी बनने से रोकता है। द्वितीय प्रकार के श्रद्धालु वे हैं जो धर्माराधन के द्वारा इहलौकिक सुखों की कामना तो नहीं करते, किन्तु स्वर्गादि दिव्य भोगों की कामना करते हैं। उनका धर्मानुष्ठान यशोविजय जी की दृष्टि में 'गरानुष्ठान' है। तृतीय प्रकार के वे श्रद्धालु हैं, जो स्वयं के विवेक के बिना ओघ संज्ञा एवं लोक संज्ञा से धर्मानुष्ठान करते हैं। इनका अनुष्ठान यशोविजय जी के अनुसार 'अननुष्ठान' है। जब दूसरों की देखा-देखी धर्मक्रिया की जाती है, जिसमें लोक, शास्त्र एवं गुरु के वचनों की अपेक्षा नहीं होती तो उसे ओघ संज्ञा से युक्त धर्मक्रिया कहा गया है। धर्मक्रिया के बड़े आयोजनों में प्रायः लोग ओघ संज्ञा के कारण धर्मानुष्ठान में सम्मिलित होते हैं। लोक संज्ञा से भी धर्मक्रिया की जाती है। उदाहरण के लिए कोई धर्मनिष्ठ व्यक्ति यह सोचे

कि धर्म की शुद्धता का आग्रह रहने पर तीर्थ का उच्छेद हो जाएगा, तो इस प्रकार लोक में धर्म-परम्परा को सुरक्षित रखने की दृष्टि से अनुष्ठानों का आयोजन लोक संज्ञा का सूचक है। इन दोनों क्रियाओं के सम्बन्ध में यशोविजय जी कहते हैं-

तस्माद् गतानुगत्या यत्क्रियते सूत्रवर्जितम्।
ओघतो लोकतो वा तद्ननुष्ठानमेव हि।।

-अध्यात्मसार

तात्पर्य यह है कि शास्त्र के निर्देश के बिना लोकपरम्परा से धर्म का अनुष्ठान किया जाना, धर्मानुष्ठान न करने के समान ही है। उसका धार्मिक दृष्टि से विशेष लाभ नहीं होता है। चतुर्थ प्रकार के धर्मश्रद्धालु वे हैं जिनका धर्म के प्रति अनुराग है। धर्म बीज का वे निरन्तर विकास कर सकते हैं। शास्त्रीय भाषा में इनका जन्म-मरण अर्द्ध-पुद्गल परावर्तन काल रह जाता है। इसे यशोविजय जी ने 'तद् हेतु अनुष्ठान' कहा है। क्योंकि इसमें जो धर्मक्रियाएँ की जाती हैं वे भावधर्म की प्राप्ति के लिए की जाती हैं।

पंचम प्रकार के धर्म श्रद्धालुओं को उपाध्याय यशोविजयजी ने परम अनुष्ठान अथवा अमृत अनुष्ठान करने वाला निरूपित किया है, जिसका संकेत पूर्व में किया जा चुका है। इस कोटि के धर्मश्रद्धालुओं को 'अन्तरात्मा' कहा जा सकता है। अन्तरात्मा वह होता है जो विषय-कषायों के आवेश पर विजय-प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करता है। उसकी तत्त्व के प्रति श्रद्धा होती है। उसका ज्ञान सम्यक् होता है। वह महाव्रतों को धारण करता है। प्रमाद-त्याग के प्रति वह प्रयत्नशील होता है तथा मोह पर विजय प्राप्त करता है। 'बहिरात्मा' इसके विपरीत होता है। वह विषय-कषायों से आविष्ट होता है, तत्त्व के प्रति उसकी श्रद्धा नहीं होती तथा सद्गुणों के प्रति द्वेष करता है। वह आत्मज्ञान से रहित होता है। आत्मा का तृतीय प्रकार 'परमात्मा' कहलाता है। वह केवलज्ञान सम्पन्न होता है तथा घाति कर्मों से अथवा आठों कर्मों से रहित होता है। अन्तरात्मा का लक्ष्य 'परमात्मा' बनना होता है।

धर्म के मार्ग पर चलने वाले लोगों के इन प्रकारों को समझने से हमें यह जानकारी हो सकती है कि हम किस स्तर पर धर्म अनुष्ठान कर रहे हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में संवर एवं निर्जरा को धर्म कहा गया है अर्थात् जो धर्मक्रिया अशुभ कर्मों के आस्रव का निरोध एवं पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करती है, वह धर्म की कोटि में आती है। इसके विपरीत अशुभ का आस्रव एवं बन्ध कराने वाली क्रियाएँ अधर्म की कोटि में आती हैं। उपाध्याय यशोविजयजी के द्वारा धर्मानुष्ठान करने वाले लोगों के जो पाँच प्रकार निरूपित किये गए हैं, उनमें प्रथम तीन को असत् अनुष्ठान तथा अन्तिम दो को सत् अनुष्ठान इसी आधार पर कहा गया है। सत् अनुष्ठानों में अन्तिम अनुष्ठान को अमृत एवं श्रेष्ठ कहा है। क्योंकि यह अनुष्ठान संवर-

निर्जरा का हेतु है।

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह पहले इस लोक की समस्याओं का निराकरण चाहता है, इसलिए धर्म का आश्रय भी वह लौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए ग्रहण करता है। वह धर्माचार्यों और सन्तों के सान्निध्य में जाकर इसी तरह की माला, मंत्र-तंत्र या स्तोत्र की अपेक्षा रखता है, जिसका अनुष्ठान कर वह लौकिक अभिलाषाओं की पूर्ति कर सके एवं उसमें बनी बाधाओं को दूर कर सके। वह जब धर्मप्रवचनों को सुनकर, सत्संगति में रहकर अथवा सत्साहित्य का स्वाध्याय कर अपने चित्त में उठे अशुभ संकल्पों एवं अध्यवसायों को मिटाना अधिक आवश्यक समझता है तो उसकी लौकिक समस्याएँ भी कुछ कमजोर पड़ जाती हैं। वह धर्म की सही समझ विकसित कर सदा के लिए चैतसिक समस्याओं से मुक्त हो सकता है।

यही धर्म की सार्थकता भी है। कुछ लोग धर्म के बारे में यह नहीं जानते कि धर्म का फल तत्काल मिलता है। वे मानते हैं कि धर्माचरण से हमारा परलोक सुधर जाएगा। वहाँ हमें पर्याप्त रूप से सुख-भोग के साधन प्राप्त होंगे। इस लक्ष्य से वे धर्मक्रिया में प्रवृत्ति करते हैं, जो यशोविजयजी की दृष्टि में गरानुष्ठान है। यह हमें धर्म के वास्तविक स्वरूप से दूर करने वाला है तथा वैषयिक सुखों की प्राप्ति को ही धर्म का फल प्रतिपादित करता है, जो उचित नहीं है। देखा-देखी धर्म क्रिया का अनुष्ठान कोई फलदायी नहीं होता, हाँ, इसके माध्यम से कोई धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने का अवसर प्राप्त कर सकता है। एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने अन्य साथी को प्रेरणा देकर धीरे-धीरे धर्म के वास्तविक स्वरूप से जोड़ सकता है।

धर्मक्रिया के लिए बाह्य प्रलोभन स्थायी उपाय नहीं होते। वे प्रारम्भ में आकर्षित कर सकते हैं, किन्तु उन बालकों या व्यक्तियों को धीरे-धीरे धर्म के वास्तविक स्वरूप का बोध कराना चाहिए। धर्मक्रिया का फल यदि भौतिक पदार्थों की प्राप्ति से जोड़ा जाएगा तो वह विषानुष्ठान बनकर रह जाएगा। धर्मक्रियाएँ आज भौतिक फल की प्राप्ति, परलोक में स्वर्गादिसुखों की प्राप्ति के प्रयोजन से जुड़ी हुई हैं। कुछ लोग देखा-देखी एवं लोकाचार के वशीभूत होकर अथवा अपनी प्रतिष्ठा के लिए धर्मक्रिया करते हैं। इनसे जीवन में कुछ अंशों में आस्रव निरोध भले ही दिखाई देता हो, किन्तु धर्म का वास्तविक स्वरूप जीवन में नहीं आता। उत्तराध्ययन सूत्र के 29 वें अध्ययन में कहा गया है कि धर्म के प्रति श्रद्धा साता के सुखों से विरक्त करती है- **"धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ।"** धर्मश्रद्धा की उपयोगिता राग में नहीं वैराग्य में है, भोग में नहीं त्याग में है, आसक्ति में नहीं अनासक्ति में है, ममता में नहीं समता में है, जड़ता में नहीं चिन्मयता में है, विभाव में नहीं स्वभाव में है, प्रेय में नहीं श्रेय में है। ★

अमृत-चिन्तन

आगम-वाणी

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं।।

-उत्तराध्ययन सूत्र, 31.2

अर्थ- एक ओर से विरति करे तथा एक ओर प्रवृत्ति करे। असंयम से निवृत्ति तथा संयम में प्रवृत्ति करे- यही आचरण विधि है।

विवेचन- मनुष्य के आचरण की श्रेष्ठता दो प्रकार से सम्भव है- एक तो अपनी बुराइयों एवं अहितकर प्रवृत्तियों के त्याग द्वारा तथा दूसरा हितकर प्रवृत्तियों को अपनाकर। भारतीय परम्परा के समस्त शास्त्र इन्हीं दो बातों का प्रतिपादन करते हैं। आचारशास्त्र का यह प्रमुख प्रतिपाद्य है कि अहितकर या पापकारी प्रवृत्तियों का त्याग किया जाए तथा हितकारी एवं कुशल प्रवृत्तियों को जीवन में स्थान दिया जाए।

जैन धर्म को प्रायः लोग निवृत्तिवादी धर्म मानते हैं, किन्तु उनकी यह मान्यता एकांगी है। जैन धर्म में निवृत्ति एवं प्रवृत्ति दोनों को समान रूप से स्थान दिया गया है। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-निन्दा आदि पापकारी या अनिष्टकारी प्रवृत्तियों का त्याग आवश्यक है। इनका त्याग करने से ही सत्प्रवृत्तियों में आचरण का बल प्राप्त होता है। जो दोषों का त्याग करने के लिए उद्यत नहीं होता, उसकी सत्प्रवृत्ति भी निर्दोष नहीं होती। इसी प्रकार पापकारी प्रवृत्तियों के त्याग का बल सत्प्रवृत्तियों के आचरण से प्राप्त होता है। इसलिए असत् से निवृत्ति एवं सद् में प्रवृत्ति- दोनों का महत्त्व है। वस्तुतः मनुष्य में दोष आयातित हैं, जिन्हें छोड़ने पर मनुष्य पवित्र होता है। उन्हें छोड़ने पर उसे आत्मशान्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है तथा वह ऊर्जा से भर जाता है। सद्गुणों का पोषण दोषों के निवारण से ही सम्भव है। इसलिए निवृत्ति पर बल प्रदान किया जाता है। यह भी सत्य है कि मनुष्य को जब तक मन, वचन एवं काया प्राप्त हैं, तब तक वह किसी न किसी प्रवृत्ति में संपृक्त रहता है। जब उसे प्रवृत्ति करनी ही है तो वह निर्दोष प्रवृत्ति करे। इसीलिए आचरण की विधि का प्रतिपादन करते हुए साररूप में कह दिया गया है कि असंयम से निवृत्ति एवं संयम में प्रवृत्ति की जाए। श्रमणाचार में मन, वचन एवं काया की गुप्ति को हम निवृत्ति के रूप में तथा ईर्या, भाषा, एषणा, निक्षेपणा एवं परिष्ठापनिका समिति को प्रवृत्ति के रूप में समझ सकते हैं। इस तरह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों मिलकर साधना के स्वरूप का निर्माण करती हैं। अब यह मनुष्य के विवेक पर निर्भर है कि वह किससे निवृत्त होता है तथा किसमें प्रवृत्त होता है। इसके लिए सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की आवश्यकता होती है। अज्ञानी जीव जिन पापकारी प्रवृत्तियों से निवृत्त होना चाहिए, उनमें प्रवृत्ति करता है तथा जिन संयममय प्रवृत्तियों में संलग्न होना चाहिए, उनसे निवृत्त होता है। यही मनुष्य की भूल है। इसीलिए वह दुःख प्राप्त करता है। इस क्रम को बदलकर अर्थात् असंयम से निवृत्ति एवं संयम में प्रवृत्ति करके वह सुखी हो सकता है। इस तरह प्रवृत्ति एवं निवृत्ति परस्पर पूरक हैं।**-सम्पादक**

अमृत-चिन्तन

वाग्वैभव (24)

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

- वीतरागता की ओर बढ़ते हुए किस तरह गुणश्रेणियाँ चढ़ी जाती हैं, इसकी जानकारी करना साधक का कर्त्तव्य है।
- जहाँ भी नियमों की अवहेलना है, वहाँ कष्ट है।
- गुरु के वचनों का उपघात या अनादर न करें तथा छिद्रान्वेषी नहीं बनें।
- जितना-जितना संयम और तप तेरे जीवन में आएगा, उतने-उतने तेरे बंधन हटते जाएंगे।
- साधना करने वालों को मन के मुताबिक चलने की बजाय आवश्यकता के अनुसार चलना चाहिए।
- प्रमाद में ले जाने वाले कार्य अनाचीर्ण हैं, करने योग्य नहीं हैं।
- आवश्यकता जीवन को चलाने के लिए जरूरी है, पर इच्छा जीवन को बिगाड़ने वाली है। इच्छाओं पर नियंत्रण आवश्यक है।
- 'धन' बंधन का कारण नहीं, ममता-मूर्च्छा बंधन का कारण है।
- परिग्रह की ममता छूटे, तो दान दिया जा सकता है।
- घर-परिवार की आसक्ति छूटे, तो संयम की ओर बढ़ा जा सकता है।
- तप-साधना ममत्व घटाने का साधन है।
- प्रसिद्धि के लिए नहीं, सिद्धि के लिए पुरुषार्थ कीजिये।
- शिक्षा से विचार और व्यवहार सुन्दर बनते हैं।
- सजग साधक के लिए रात्रि भी दिन के समान होती है।
- बारह वर्ष तक यदि कोई 'तच्चित्ते तम्मणे' होकर सत्य भाषण व सदाचरण करे, तो उसे वचन सिद्धि हो जाती है।
- जिसे आत्मबोध नहीं, वह अज्ञानी है।
- सुख और दुःख की भोगजन्य स्थिति में हर्ष या शोक के स्थान पर समभाव रखना चाहिए।
- मनोज्ञ वस्तु के संयोग का चिन्तन करना और अमनोज्ञ वस्तु के वियोग का चिन्तन करना आर्त्तध्यान है।
- असली सुख है भीतर का ज्ञान।
- इन्द्रिय पोषण के परिणाम दुःखद होते हैं।

-हीरा प्रवचन-पीयूष से संकलित : श्री पी. शिखरमल सुराणा, चेन्नई

प्रवचन

क्रूरता का यह नग्न ताण्डव क्यों? (2)

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी महाराज

संरक्षण की चिंता

रौद्रध्यान का चौथा प्रकार है- संरक्षणानुबंधी चिन्तन। प्राणी अपने जीवन, प्राप्त भोग, अधिकार और संपत्ति की रक्षा के लिए अनादि काल से युद्ध व संघर्ष करता आया है। आज संसार में अस्त्र-शस्त्रों की भयानक प्रतिस्पर्धा मची हुई है। अणुबम, हाइड्रोजन बम, प्राणघातक गैसें और प्रक्षेपास्त्र आदि एक से एक भयंकर शस्त्रों का निर्माण हो रहा है- वह किस भावना से? संरक्षण की ही भावना से तो? आज प्रत्येक राष्ट्र अपने संरक्षण के लिए चिंतित है, परस्पर भयाकुल है और इस भावना से प्रेरित होकर मानव जाति का सर्वनाश करने वाले घातक- शस्त्रों का निर्माण किए जा रहा है। आप सुन रहे हैं, इन शस्त्रों के प्रयोग से लाखों -करोड़ों मनुष्यों का संहार हो रहा है। जगह-जगह विनाश लीलाएँ हो रही हैं। तो इस प्रकार के प्रयोग और चिन्तन करने वाले चाहे वैज्ञानिक हों, राष्ट्र नेता हों या सामान्य प्राणी हों, उनका चिन्तन किस कोटि में आयेगा? रौद्रध्यान की श्रेणी में ही तो।

सिंह कितना क्रूर और हिंसक पशु है?

कहते हैं सिंह साधारण स्थिति में किसी पर आक्रमण नहीं करता। या तो उसे भूख लगने पर शिकार करता है या जब उसे लगता है, उस पर कोई आक्रमण करने वाला है तो वह भयाक्रांत होता है और अपने बचाव के लिए उस पर झपटता है, आक्रमण करता है। सांप की भी यही मनोवृत्ति बताई जाती है कि जब तक उसे नहीं छेड़ा जाय, वह चुपचाप अपनी दिशा में चलता रहता है, जब उसे अपने ऊपर आक्रमण का भय होता है तब वह स्वयं की रक्षा के लिए वार करता है। मारवाड़ी में कहावत है- ''गोगोजी! महाराज सहाय करज्यो।'' ''तो भाई पूंछडी पर पग तू मत धरज्ये।'' मतलब सांप जब तक भयभीत नहीं होता या उसे कष्ट नहीं पहुँचाया जाता तब तक वह नहीं काटता, किन्तु जब उसे अपने ऊपर खतरे की आशंका होती है, तभी वह रौद्र रूप धारण करता है।

मनुष्य में यह क्रूरता विशेष पाई जाती है। सिंह अपने शिकार पर ही झपटता है। सांप आक्रमण करने वाले को काटता है, पर मनुष्य इतना क्रूर है कि वह एक दुश्मन के लिए हजारों लाखों निरपराध व्यक्तियों को भी मौत के घाट उतार देता है। हिरोशिमा और

नागासाकी में जो विनाश लीलाएँ हुईं, वे इस बात की प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हजारों दूध मुँहे बच्चों, निर्दोष नारियों तथा पुरुषों ने अमेरिका का क्या बुरा किया था, पर उन्हें घर में बैठे, सोये हुए इस प्रकार भून दिया गया जैसे हजारों-लाखों चींटियों का समूह कहीं एकत्र हो और उस पर दहकता अंगार डाल दिया जाय। तो इस प्रकार विषय-संरक्षण, राज्य व सम्पत्ति के संरक्षण एवं विस्तार के लिए मनुष्य अत्यन्त रौद्र रूप धारण कर राक्षसी कृत्य करने लग जाता है।

पुराने जमाने में यज्ञ किए जाते थे। उनमें कुछ यज्ञ आपत्ति निवारण के लिए, राज्य, परिवार व स्वास्थ्य की रक्षा के लिए भी किये जाते थे। उनमें हजारों पशुओं की बलि दी जाती थी, यहाँ तक कि शुभ लक्षण वाले पुरुष की बलि देकर विपत्ति से बचने का प्रयत्न किया जाता था। अमर कुमार की कथा आपने सुनी ही होगी, जिसे बलि देने के लिए राजा ने माता-पिता को उसके बराबर सोना देकर खरीद लिया था। उस मासूम बच्चे को राजा की आपत्ति दूर करने के लिए धधकते हुए अग्नि कुंड में झोंक दिया गया, नवकार मंत्र के प्रभाव से उसका बाल बांका नहीं हो सका, यह बात दूसरी है, किन्तु मनुष्य की संरक्षण सम्बन्धी आसुरी वृत्ति का इससे पता चलता है।

आज भी यदाकदा अखबारों में आप सुनते हैं, किसी ने देवी को प्रसन्न करने के लिए हजारों बकरों की बलि दी। किसी ने अबोध बच्चों को अग्नि कुंड में स्वाहा कर डाला। किसी ने अपने संकट दूर करने के लिए गाँव के गाँव जलाकर भस्म कर दिए। चिन्तन यह करना है कि यह क्रूर राक्षसी भाव क्यों पैदा होता है? अपने सुख, विषय आदि की रक्षा के लिए। जब तक मनुष्य में विवेक नहीं जागता, वह अज्ञान में अंधा बना हुआ यही सोचता है बस ऐसा करने से मैं सुखी हो जाऊँगा, मेरे संकट दूर हो जाएँगे। पर यह निरा अज्ञान, मूढता और विवेक भ्रष्टता है। दूसरों को दुःख देने से यदि सुख मिलेगा तो समझ लीजिए प्रचंड सूर्य किरणों से भी शीतलता बरसने लगेगी। सांप की जहरीली दाढ़ों से अमृत झरने लगेगा।

संरक्षणानुबंधी यह रौद्रध्यान संसार में सबसे अधिक विनाश लीला रचाता रहा है। प्रलय मचाता रहा है। इससे बचने का उपाय यही है कि मनुष्य अपने ध्यान-प्रवाह को आत्म-अभिमुखी बनाए। अपने सुख-दुःख का कर्ता स्वयं को माने। वह सोचे- सुख-दुःख देने वाली, मेरी आत्मा स्वयं ही है- *अप्पा कत्ता विकत्ता य सुहाण य दुहाण य।* दूसरे को अपने दुःख-सुख का कारण मानना ही कुबुद्धि है, मूढ़ता है। अध्यात्म रामायण में एक प्रकरण है, जब निषादराज गुह ने राम के वनवास तथा अन्य सब संकटों का कारण कैकयी को बताते हुए उसे दोषी ठहराया तो लक्ष्मण जी ने कहा-

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः, स्वकर्म सूत्र-ग्रथितो हि लोकः।।

-अयोध्या काण्ड,9.6

निषाद राज! सुख और दुःख को देने वाला कोई अन्य नहीं है। जो यह समझता है कि मुझे कोई अन्य सुख-दुःख देता है, तो यह उसकी मूर्खता है, कुबुद्धि है; और जो यह समझकर अभिमान करे कि यह सब सुख मेरे ही कृतित्व का फल है, तो इस प्रकार का अहंकार भी वृथा है। वास्तव में तो इस संसार चक्र में प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्म की डोरी से बंधा हुआ घूम रहा है।

जब मनुष्य यह सोच लेता है कि सुख-दुःख कर्म के अनुसार आते हैं, तो फिर न तो उसे आए हुए संकट में दीनता सताती है, और न आने वाले संकट की चिंता। अर्थात् न उसे आर्त्तध्यान होता है और न रौद्रध्यान। वह सोचता है भाग्य में यदि दुःख लिखा है तो उसे टालने वाला कौन है? यदि सुख लिखा है तो उसे कोई रोकने वाला कोई नहीं। फिर रक्षा व बचाव की चिंता में दुबला क्यों होना।

राजा भोज की एक कहानी प्रसिद्ध है। उसने एक बार विद्वानों, याचकों और गरीबों को अपार संपत्ति दान करनी शुरू की। यह देखकर मंत्री ने सोचा, यदि राजा ऐसे ही संपत्ति लुटाता जायेगा तो थोड़े ही दिनों में खजाना खाली हो जायेगा। राजा को मना भी करें तो कैसे? उसने एक युक्ति सोची। राजमहल के बाहर उसने दीवार पर खडिया मिट्टी से एक श्लोक लिखा- '**आपदर्थं धनं रक्षेत्।**' अर्थात् आपत्तिकाल के लिए धन बचाकर रखना चाहिए। राजा ने श्लोक पढ़ा तो मंत्री का आशय समझ गया। राजा को मंत्री की बुद्धि पर दया आई कि वह कैसे भविष्य की चिंता में दुबला हो रहा है।

राजा ने उसी श्लोक के नीचे लिख दिया-"**श्रीमतामापदः कुतः?**" तुम्हारा कथन तो ठीक है। पर भाग्यवान पुरुषों को आपत्ति क्यों आयेगी, जिसके लिए चिंता करनी पड़े?

मंत्री ने श्लोक पढ़ा, तो सोचा-"राजा को अपने भाग्य पर बड़ा गर्व हो रहा है, इस गर्व को दूर करना चाहिए।" इसलिए मंत्री ने उसके नीचे लिखा-"**सा हि चेत् यदि दुर्भाग्यात्।**" समझ लो! दुर्भाग्य से आपत्ति आ गई तो? फिर क्या करेंगे। राजा ने प्रातः काल मंत्री का श्लोक पढ़ा तो मन-ही-मन हँसकर नीचे लिख दिया-"**संचितोऽपि विनश्यति।**"

यदि दुर्भाग्यवश विपत्ति आ गई तो संग्रह की हुई संपत्ति भी नहीं टिक सकेगी। सौभाग्य के साथ-साथ संपत्ति भी चली जायेगी। फिर उसकी चिंता क्यों करनी? जब तक पुण्य का

उदय है, कोई लाख प्रयत्न करे तब भी आपको आँच आने वाली नहीं, और यदि पाप का उदय आ गया तो भरे हुए भंडार भी लुट जायेंगे। जमीन में गढ़ा सोना कोयला बन जायेगा। राजा के उत्तर से मंत्री के मन में भी धैर्य और शांति आ गई। तो बंधुओं! मनुष्य जो भविष्य के सुख के लिए योजनाएँ घड़ रहा है, वर्तमान में जीवन की सुख-सामग्रियों की रक्षा की चिंता कर रहा है, रात-दिन उनकी फिकर में डूब रहा है, यह सब दिमागी भार है। सब व्यर्थ है। उसे अपने भाग्य पर, अपनी आत्मा पर और अपने धर्म पर विश्वास रखना चाहिए कि धर्म की यदि रक्षा होती है तो सब की रक्षा हो जायेगी। धर्म का नाश हो गया तो समझ लो सब कुछ नष्ट हो गया। एक प्राचीन कहावत है- **"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः"**। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा अवश्य करता है, जिसने धर्म को छोड़ दिया, धर्म भी उसे छोड़ देता है भवसागर की उथल-पुथल में। कहा भी है- "जो दृढ़ राखै धर्म को ताहि राखे करतार।" मैं समझता हूँ आपका भी इस बात पर विश्वास होगा? यदि है तो फिर आप अपने विषयों के संरक्षण, धन, संपत्ति परिवार और स्वास्थ्य की रक्षा की चिंता में इतने क्यों डूब रहे हैं कि धर्म की रक्षा को ही भूल गये। मनुष्य अपनी नैतिक वस्तुओं की भी रक्षा करता है, किन्तु पहले धर्म की रक्षा करके उनकी रक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए। धर्म की हानि करके यदि शरीर व धन की रक्षा की, तो क्या रक्षा की?

कुमारपाल का आदर्श

गुजरात के परम आर्हत राजा कुमारपाल के जीवन का एक प्रसंग है। आचार्य हेमचन्द्र के उपदेशों से उसका हृदय सुबुद्ध हो गया था। दया, करुणा और धर्म के संस्कार उसमें जगे। जब गुजरात के सिंहासन पर कुमारपाल का अभिषेक हुआ तो पुरोहितों ने राजा को परामर्श दिया-"महाराज! राज्य की कुलदेवी का मंदिर है, वहाँ पर सर्वप्रथम देवी के समक्ष बलि चढ़ना चाहिए, अन्यथा देवी कुपित हो जायेगी तो राजा और प्रजा का अनिष्ट हो सकता है।

राजा पुरोहितों के मायाजाल को व अज्ञान को भी समझ रहा था। उसने सोचा सिंहासन पर आरूढ़ होते ही पुरोहितों को अपना विरोधी नहीं बनाना चाहिए और अपने धर्म एवं विवेक को भी नहीं छोड़ना चाहिए। यदि कुल परम्परा का तिरस्कार कर देता हूँ तो ये पुरोहित प्रजा को मेरे विरुद्ध भड़का देंगे कि राजा तो कुलदेवी की अवज्ञा कर रहा है, और फिर अनेक षड्यंत्र मुझे अपदस्थ करने के लिये रचे जा सकते हैं। अतः मुझे ऐसा उपाय सोचना चाहिए कि अपने आदर्श से ना गिरूँ और न प्रजा में विरोधी प्रचार का अवसर आने दूँ।

यह सोचकर राजा ने पुरोहितों को आदेश दिया कि परम्परा के अनुसार इस अवसर पर जितने बकरों की बलि चढ़ाई जाती है, उतने बकरे देवी के मंदिर में बंद कर दिये जायें। देवी

को यदि बलि लेनी होगी तो वह स्वयं उनकी बलि ग्रहण कर लेगी। यदि देवी, जो कि साक्षात् माता स्वरूप है, उसे यदि अपनी संतान की बलि पसंद नहीं होगी तो वह बकरों का कुछ भी नहीं करेगी।

सायंकाल बकरों को गिनकर देवी के मंदिर में बंद कर दिया गया। प्रातः हजारों लोग मंदिर के द्वार के बाहर कुतूहल देखने खड़े थे कि देवी ने कितनी बलि ली? पुरोहित भी द्वार पर उपस्थित हुए। स्वयं महाराज कुमारपाल भी आये और देवी के मंदिर का द्वार खोला गया तो सभी बकरे वहाँ आनन्द से इधर-उधर घास चरते मिले। देवी ने किसी भी बकरे का भक्षण नहीं किया। सचमुच देवी को तो बलि चाहिए ही कहाँ? यह तो बीच के स्वार्थी और रसलोलुप लोगों की प्रवंचना होती है, जनता को गुमराह करने की तरकीब होती है। तो राजा ने पुरोहितों से पूछा- "क्यों! देवी ने किसी पशु की बलि नहीं ली?"

पुरोहित क्या बोलते? उनकी तो पोल खुल रही थी। राजा कुमारपाल ने कहा- "वास्तव में देवी बलि पसन्द नहीं करती। अतः सब बकरों को मुक्त कर दिया जाय और अब से कोई बलि न दी जाय।" तो यह है सच्चा आत्मविश्वास और धर्मनिष्ठा। कोई साधारण राजा होता और पुरोहितों द्वारा इस प्रकार बहकाया जाता कि बलि नहीं दोगे तो अनिष्ट हो जायेगा, तो क्या करता वह? शायद दस-बीस, पचास पशुओं की ही क्या, पुरोहित कहते तो मनुष्यों की भी बलि देने तैयार हो जाता। लेकिन कुमारपाल के हृदय में सच्ची धर्मनिष्ठा थी। अटल विश्वास था कि यदि मैं अपने अहिंसा धर्म की रक्षा करूँगा तो कोई भी शक्ति मेरा बाल बांका नहीं कर सकती। उसे गलत तरीकों से, अन्याय, अत्याचार और हिंसा के बल पर अपनी रक्षा और सुरक्षा नहीं चाहिए थी। वह तो न्याय और धर्म के आधार पर ही अपना जीवन बिताना चाहता था। बंधुओं! क्या आज आपमें भी इतनी निष्ठा है? क्या आप भी अपने जीवन निर्वाह के लिए, परिवार व समाज की रक्षा के लिए इस प्रकार का कोई अन्याय अत्याचार व दुष्कर्म तो नहीं करते, जिससे आपकी धार्मिकता कलंकित होती हो, आपकी आत्मा पतित होती हो, और आप आर्त्त-रौद्र ध्यान में फंस जाते हो? प्रवचन सुनने का सार यही है कि आप इस विषय पर गहराई से सोचें और आत्म-निरीक्षण करें। आपके समक्ष आर्त्तध्यान एवं रौद्रध्यान का यह विस्तृत विवेचन किया गया है। यह समय बिताने के लिए नहीं किया है, मनोरजंन के लिए भी नहीं किया है। किन्तु जीवन को विशुद्ध बनाने के लिए किया है। हृदय को जगाने के लिए ही यह सब प्रयत्न किया गया है। ताकि आप अपने जीवन को अधिक से अधिक आर्त्त-रौद्र ध्यान से बचाकर, धर्मध्यान में लगाएँ और सच्ची शांति प्राप्त करें। ■

प्रवचन

जीवन के साथ सीखें मरण की कला भी

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी

आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. द्वारा नेहरु पार्क, जोधपुर में 1 सितम्बर 1994 को फरमाए गए इस प्रवचन का आशुलेखन श्री नौरतनमल जी मेहता, जोधपुर द्वारा किया गया है।-**सम्पादक**

धर्मप्रेमी बन्धुओं! तीर्थंकर भगवान् महावीर की आदेय-अनुपम वाणी उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे अध्ययन में जीवन जीने की विशेषता और पाप निवृत्ति की साधना बताई गई है। वहाँ कहा गया है- ''मुहुं-मुहुं मोहगुणे जयंतं।'' मानव! संसार की विषम स्थिति में पग-पग पर परेशानियाँ और परीषह हैं, पर तू हर कदम में मोह को जीतने का प्रयास कर। तेरा व्यवहार, तेरी वाणी, तेरा चिन्तन जब तक यह शरीर क्षीण नहीं होता है तब तक मोह को जीतने के प्रयास में लगा रहना चाहिये। इसके लिए अनेकानेक सूत्रों में साधना की बात बताई गई है। क्या खाना चाहिये, कब खाना चाहिये, कैसे खाना चाहिये, कैसे बोलना चाहिये, कैसा व्यवहार करना चाहिये आदि बातों पर ध्यान दिलाया गया है। ग्रन्थों में अनेकानेक सुन्दर बोल मिलते हैं। स्वर शास्त्र बताता है कि शुक्ल पक्ष में कौनसा स्वर चलना चाहिये, कृष्ण पक्ष में कौनसी नाड़ी चलनी चाहिये, सौम्य काम कब करना चाहिये, कठोर काम कब करना चाहिये। प्राणायाम शास्त्र है, रसायन शास्त्र है और न जाने कितने-कितने शास्त्र हैं। निर्दोष रूप से बोलने की कला सिखाने वाले कई सूत्र हैं।

जीवन जीने के लिए सैकड़ों-हजारों शास्त्र हैं। कारण क्या? मात्र एक ही बात है- ''जीवेम शरदः शतं''। मैं सौ साल तक स्वस्थ होकर जीऊँ। मानव की इस आकांक्षा या इच्छा के लिए न जाने कितनी चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, वह उन सबको आजमाता है, पर तीर्थंकर भगवान् महावीर कह रहे हैं- ''मानव! तूने मनुष्य जन्म लिया, सब कुछ किया, लेकिन यदि मरना नहीं सीखा तो कुछ भी नहीं सीखा।'' जीवन के इतिहास का पहला पृष्ठ जन्म है तो अंतिम पृष्ठ मृत्यु है। पहला पृष्ठ सुन्दर है, चित्रकारी वाला है, किन्तु अंतिम पृष्ठ यदि सुन्दर नहीं बनाया तो तेरे किए कराये पर पानी फिर जायेगा। पाठशाला में भर्ती होने के लिए सैकड़ों रुपयों की फीस जमा कराई, पढ़ने के लिए गया, घर पर होमवर्क किया, शाम को ट्यूशन भी किया, इस तरह करते एक-दो दिन नहीं, महीने बीत गये, लेकिन परीक्षा आई उस वक्त कांप गया तो क्या उसे अगली कक्षा मिलेगी? अगली कक्षा

तभी मिलेगी जब पहली कक्षा में उत्तीर्ण होगा।

तीर्थंकर भगवान् महावीर कह रहे हैं-मानव जीवन जी लेने के साथ मरण की कला भी सीख। यही बात पांचवें अध्ययन में कही जा रही है-

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे।
तत्थ एगे महापण्णे, इमं पण्हमुदाहरे।।

-उत्तराध्ययन, अ.5 गाथा 1

जिसका दूसरा किनारा नज़र नहीं आ रहा है ऐसे संसार समुद्र में अनन्त-अनन्त प्राणी अनन्त काल से जन्म-मरण करते आ रहे हैं, पर न वे जीना जानते हैं, न मरना। जन्म लेते हैं, पर जन्म क्या होता है यह नहीं जानते। कोई भी ऐसा जन्म नहीं, जिसमें जन्म के साथ मरण न रहा हो।

जीवन-नदी के दो तट हैं। एक किनारा है- जन्म, दूसरा किनारा है मरण और बीच में है जीवन। जब तक जन्म के साथ समाधिमरण नहीं मिलेगा तब तक जीवन की हर क्रिया अधूरी है। जीवन इन जन्म और मरण के तटों के सहारे ही चलता है। कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष मिलते हैं तो एक माह बनता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों होगी तब साधना होगी। एक से निवृत्ति होगी तो दूसरे में प्रवृत्ति होगी। आस्रव से निवृत्ति एवं संवर में प्रवृत्ति करनी होगी। जब तक दोनों नहीं होंगे तब तक सिद्धि नहीं मिलेगी। जीवन चलाने के लिए सांस लेना पड़ेगा तो छोड़ना भी पड़ेगा। जहाँ उच्छ्वास है वहाँ निश्वास भी है। जागना भी है तो सोना भी है। अगर दस दिन नहीं सोए तो क्या होगा और दस दिन सोते ही रहे तो? स्वस्थता के लिए सोना भी जरुरी है तो जागना भी आवश्यक है। खाना भी जरुरी है, तो खाने के साथ निहार भी आवश्यक है।

तप में तप करने वाले की जठराग्नि पचाती है। पेट खाली रहता है तब भी जठराग्नि कुछ-न-कुछ खा रही है। मात्र खाया जाय और पचाया नहीं जाय वह भी नहीं चलता। हर बात का क्रम है। बोलना भी पड़ता है तो मौन भी रहना पड़ता है। व्यापार में आय भी है तो व्यय भी है। केवल व्यय ही व्यय हो तो काम नहीं चलेगा और आय ही आय है तो भी..?

अतः आप मात्र जीने की बात ही सीखकर नहीं रहें, मरण भी सीखना है। मरण को समझने और सीखने के लिए तैयारी चाहिये। बिना तैयारी के जाओगे, हाय-हाय करते जाओगे तो मरण बिगड़ जायेगा। मरण को समझना भी कला है। जिस किसी ने इस कला का आराधन कर लिया तो समझना चाहिये उसने सही मायने में जीवन जीना सीख लिया। नीति कहती है-

मरना भी तो एक कला है, नहीं सभी को आती है।
जिसे मौत आ गई समझो, चौरासी कट जाती है।।

जिसने मरण बिगाड़ा उसने, मानो सब कुछ लिया बिगाड़।
जिसने मरण सुधारा उसने, मानो सब कुछ लिया सुधार ।।

मरना भी तो एक कला है। आपको कमाने की कला याद है, खाने की कला याद है। न जाने कितनी-कितनी कलाएँ याद हैं। बहत्तर कलाएँ हैं जिसमें सोने की भी कला है, जागने की भी कला है।अगर जगना भी बिना सही तरीके के है तो लड़ाई हो जाती है। आप अन्तगड सूत्र सुनेंगे, कल्प सूत्र भी सुनेंगे- महारानियों को स्वप्न आए, वे राजमहल में पहुँची तो उन्होंने कैसे जगाया? अगर जगाने की कला नहीं है तो झगड़ा हो सकता है और फिर दिन भर बेकार हो सकता है।

जीवन जीना भी कला है, तो मरना भी कला है। जिसने मरना सीख लिया उसने सबकुछ सीख लिया। एक व्यक्ति है जिसने जीवन में कुछ नहीं किया, पर अंतिम समय में मरना कैसे यह खयाल आ गया तो उसका भी बेड़ा पार हो सकता है। माता मरुदेवी को अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त हो गया और वे मोक्ष चली गईं। शास्त्र वर्णन करता है- हजारों साल का संयम पालने वाला भी ईर्या-भाषा-एषणा का खयाल नहीं रखे और अन्त समय यों ही चला जाय तो उसका कल्याण नहीं हो सकता। एक जीवन भर राजा रहा और अंतिम तीन दिन संयम में रहा तो वह मरकर सर्वार्थसिद्ध में चला गया। कोई एक हजार वर्ष तक साधु रहा, तीन दिन राजा के रूप में रहा, उसने न तो राजसुख भोगा और न ही आत्म कल्याण किया।

आप घर-गृहस्थी में रहते हैं, जहाँ बात-बात पर उद्विग्नता, परेशानी और हैरानी रहती है। मन की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होती। आप दुःख संताप में मर जायेंगे तो मरण सुधार नहीं होगा। इसलिए शास्त्र कह रहा है- जिसने मरण सीख लिया, उसने सब कुछ सीख लिया। मरने का नाम सुनने के साथ लोगों के होश-हवास उड़ जाते हैं और जिसके मरण में ऐसी स्थिति है तो जीवनभर की गई उसकी सामायिक, त्याग-तप और साधना सब बेकार हो जायेगी। अन्तगड सूत्र आपके सामने इसी प्रकार समाधिपूर्वक मरने वालों की कला सीखने की बात कहता है।

तैयारी हमको भी करनी है, आपको भी करनी है, क्योंकि मौत कभी पूछकर नहीं आती। चाहने से न मौत आती है, न रुकती है। कुछ हैं जो जीना चाहते हैं, जिनको धन का, परिवार का, प्रतिष्ठा का सुख है, उनके सामने कभी मौत का नाम आए तो उनका हर प्रयास रहता है कि मौत न आए तो अच्छा है। मौत की आशंका होने पर वे इन्जेक्शन लगवाते हैं, ऑपरेशन करवाते हैं, ग्लूकोज चढ़वाते हैं, श्वास नली लगाकर जीना चाहते हैं। कई तरह के इलाज तथा उपाय करते हैं। वे चाहते हैं कि मौत नहीं आए, पर उनके चाहने मात्र से मौत

रुकती नहीं। कुछ हैं जो चाहते हैं कि मौत आ जाय। कई हैं जो दुःखी हैं, हर क्षण-हर पल कहते हैं- भगवन्! "इण दुःख सुं तो मौत चोखी।" न लड़का कहने में है, न भाई। घर पर न समय पर खाने को मिलता है, न कोई देखभाल होती है। वह हर समय रोता रहता है, कोई पूछने वाला नहीं, इसलिये वह सोचता है इस जिन्दगी से तो मरना अच्छा है।

एक डोकरी मौत माँगती थी। उसका बेटा मर गया, बेटी नहीं रही, पोते चले गये इस तरह एक-एक करके घर के सब सदस्य चले गये। वह दुःखी थी और दुःख में कहती रहती- "भगवन्! तू मेरी चिट्ठी डालना कैसे भूल गया? मुझे उठा ले।" डोकरी न साफ देख सकती थी, न पूरा सुन सकती थी। वह जैसे-तैसे दो रोटी पकाकर खाती थी। एक दिन घर में सांप निकल गया।

दुःख की दाजी डोकरी, कहे परमेश्वर मार।
नाग घर में निकल्यो, दौड़ी घर के बाहर।।

उसे दुःख है इसलिए मौत मांगती है, पर मौत चाहती नहीं। मांगने से मौत आयेगी भी नहीं। तेतली पुत्र प्रधान ने जिस राजा को बचाया, पाला-पोसा और राजगद्दी पर बैठाया, वह राज दरबार में गया तो राजा ने मुँह फेर लिया, बात तक नहीं की। इससे प्रधान के मन में आया, इस तरह के अपमान के बजाय तो मरना अच्छा। घर-घर में ऐसे दृष्टान्त मिल सकते हैं। बच्चे को पाला-पोषा, बड़ा किया, जीवन संवारा वही लड़का जब तिरस्कार करता है तो मन में आता है इसके बजाय तो लड़का नहीं होता तो अच्छा। वह भगवान से मौत मांगती है, पर मांगने से मौत आती नहीं।

तेतलीपुत्र ने तलवार निकाली। वह वार करने हेतु तत्पर हुआ, पर तलवार भौंटी (धार रहित) हो गई। उससे हत्या तो दूर चमड़ी तक नहीं उतरी। तलवार ने काम नहीं किया तो वह सीधे बगीचे में पहुँचा और एक पेड़ के रस्सी बांधी, फांसी बनाई और....? शास्त्र कह रहा है- पेड़ की डाल टूट गई। वह आग में कूदा, पर वहाँ भी बच गया। मौत आनी होती है तो एक ठोकर लगने पर आ जाती है। आग में कूदते ही तत्काल पानी बरसा, आग शांत हो गई। वह मरना चाहता था, पर मर नहीं सका। आखिर में वह रोने लग गया कि मैं किसी के सामने जाकर क्या कहूँगा और कहूँ भी तो मेरी मानेगा कौन?

उस समय वहाँ एक देव उपस्थित हुआ और कहा- "इस तरह से तुम्हारे जन्म-मरण के बन्धन टूटने वाले नहीं हैं। तू मरना ही चाहता है तो समाधि पूर्वक प्रयत्न कर, जिससे तेरे जन्म-मरण मिट जायेंगे।" इस संसार सागर में अनन्त-अनन्त प्राणी बाल मरण को प्राप्त हो रहे हैं। बाल मरण से जन्म-मरण नहीं घटते।

आज आप जीना चाहते हैं, मरने से डरते हैं। आप ही नहीं, प्रत्येक प्राणी मौत से

घबराता है। एक बादशाह का वर्णन मिलता है। वह खूब आराम से खाता था और खाते-खाते उसका वजन बढ़ गया। उसकी आदत थी खाना, खूब खाना और अच्छा खाना। लोग कहते- आपको घी नहीं खाना चाहिये, लेकिन उसका एक ही उत्तर होता- मरां जरे मरां, घी तो खावां।

कुछ लोग हैं जो न जीवन जीना जानते हैं और न मरना। जीने के लिए कितना खाना, कब खाना, कैसे खाना, यह नहीं जानने के कारण तकलीफ उठाते हैं। डॉक्टरों-हकीमों से उपाय पूछते हैं। महाराज के यहाँ भी आयेंगे तो उपाय पूछेंगे। महाराज ने कहा- "भाई! एक महीने तक आंयबिल करके देखो।" महाराज! आयंबिल होता तो आपसे क्यों पूछता? मैं खाना नहीं छोड़ सकता। खाना तो दूर, दूध तक नहीं छोड़ सकता। आप तो खाते हुए कोई उपाय बताओ। महाराज ने कहा- "कल आना।" दूसरे दिन महाराज ने शास्त्र निकाला और कहा- चालीस दिनों में आप मर जायेंगे। मौत का नाम सुनते ही वह मौत के बारे में सोचने लगा। चिंता में जो भी कुछ खाता, पर पचता नहीं। पहले अधिक भी खा लेता तो पच जाता था, अब बेमन खाता है, फिर भी पचता नहीं और दुबला होता जा रहा है।

क्यों डर रहा है? उसे मौत का भय है। यह मौत का भय आज से है, ऐसी बात नहीं। नन्दीसूत्र में ऐसा ही दृष्टान्त मिलता है। आपने बकरे की बात सुन रखी है। एक बकरे को सुबह से शाम तक खूब खिलाया जाता। दिन भर खिला-खिला कर शाम को उसे शेर के पिंजरे के सामने खड़ा कर दिया जाता। बकरा खाते-पीते भी न बढ़ रहा था, न घट रहा था।

जीवन भर जो कुछ किया, उस पर कलश लगाना चाहो, अपनी गति ऊँची बनाना चाहो तो मरना सीखो। पर्युषण के आठ दिनों में मोक्ष जाने वालों की चर्चा आएगी, जिन्होंने जीना भी सीखा, मरना भी। आठ दिन के वास्ते आप भी सीख जाओ। मरण आये या नहीं, जीवन सुधारने वाले ही मरण सुधारते हैं। पयुर्षण के दिन आ रहे हैं। वैसे आषाढ़ सुदी चौदस से आप रोज सुन रहे हैं, पर करने के दिन आ रहे हैं। पयुर्षण के दिन मात्र सुनने के नहीं, आपको इन दिनों में कुछ करके दिखाना है। आप जहाँ भी रहें, धर्म स्थान में रहें। किसी को परिस्थितिवश घर पर रहना भी पड़े तो संवर के साथ रहें। सामायिक, समाधि और तप के साथ रहें। अगर इस तरह रहेंगे तो जीवन सुधरेगा।

प्रवचन प्रारम्भ करते कहा था- मुहुं-मुहुं मोहगुणे जयंतं...। प्रतिदिन मोह को जीतने का अभ्यास किया जाय तो जीवन भी सुधरेगा और मरण भी। फिर इस जीव को मुक्ति गमन से कोई रोकने वाला नहीं है। बिना इच्छा के हाय-हाय करते कई बार मरण प्राप्त किया है। आप जीने और मरने की कला सीखकर ममता-मोह छोड़कर समाधि-मरण प्राप्त करें, तो सुख-शांति प्राप्त कर सकेंगे। ■

अध्यात्म-चिन्तन

सुख-दुःख का जनक कौन? (2)

श्री कन्हैयालाल लोढ़ा

(गतांक से आगे)

सुख-दुःख का कारण : कोई अन्य नहीं

जो प्राणी अपने दुःख कारण दूसरों को मानता है वह दूसरों से अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था से सुख पाने की आशा करता है। किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था से सुख पाने की आशा करना भयंकर भूल है। कारण कि जिन वस्तुओं से सुख की आशा करते हैं, क्या उनसे हमारा नित्य संबंध है? जिन व्यक्ति से हम सुख की आशा करते हैं, क्या वे स्वयं दुःखी नहीं हैं? जिन परिस्थितियों से हम सुख की आशा करते हैं क्या उनमें किसी प्रकार का अभाव नहीं है? जिस अवस्था में सुख का भास होता है क्या उसमें परिवर्तन नहीं होता है? कहना होगा कि किसी भी वस्तु से नित्य संबंध संभव नहीं है। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके जीवन में दुःख न हो। कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो अभाव रहित हो, और प्रत्येक अवस्था परिवर्तनशील है, जिससे नित्य संबंध नहीं है। जो स्वयं दुःख से पीड़ित है, जो अभावयुक्त है, जो परिवर्तनशील है उससे सुख की आशा करना क्या भूल नहीं है? अवश्य भूल है।

अन्य को दुःख-सुख का कारण मानने से हानियाँ

1. वस्तु से आशा- वस्तुओं से सुख मिलता है, इस भूलजनित मान्यता का परिणाम यह होता है कि उनमें नित्यता, सत्यता एवं सुन्दरता प्रतीत होने लगती है, जिससे प्राणी उन वस्तुओं की दासता में जकड़ जाता है। वस्तुओं की दासता प्राणी में लोभ या संग्रहवृत्ति उत्पन्न कर देती है। लोभ या संग्रहवृत्ति अभाव की अर्थात् दरिद्रता की द्योतक है। अतः लोभ ही दरिद्रता का मूल है। यही नहीं जड़ वस्तुओं के लोभ से, उनमें अपनापन का भाव होने से, जड़ वस्तुओं से जुड़ने से जड़ता बढ़ती जाती है, जिससे चिन्मयता-चेतनता तिरोहित हो जाती है, जो बहुत बड़ी हानि है।

2. व्यक्ति से आशा- व्यक्तियों से सुख की आशा करने का परिणाम यह होता है कि प्राणी संयोग की दासता और वियोग के भय से ग्रस्त हो जाता है। यद्यपि संयोगमात्र निरन्तर वियोग में बदल रहा है, परन्तु सुख की आशा संयोगकाल में वियोग का दर्शन एवं बोध नहीं होने देती। जिससे प्राणी मोह में आबद्ध होकर अपने अविनाशी स्वभाव से विमुख हो जाता है। यही नहीं, जिन व्यक्तियों से प्राणी सुख की आशा करता है वे व्यक्ति भी स्वयं उससे

सुख की आशा करने लगते हैं। इस प्रकार दो दुःखी व्यक्ति सुख की आशा के कारण परस्पर मोह में आबद्ध हो जाते हैं। यह नियम है कि जहाँ मोह है वहाँ मूर्च्छा है, जड़ता है और जहाँ जितनी मूर्च्छा व जड़ता है वहाँ उतनी ही चेतनता की कमी है, चिन्मय स्वरूप की विस्मृति है जो बहुत बड़ी क्षति है।

3. परिस्थिति से आशा– परिस्थिति विशेष से सुख पाने की आशा करना भूल है। कारण कि विश्व में कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो परिपूर्ण हो, जिसमें किसी भी प्रकार का अभाव न हो। किसी न किसी प्रकार का अभाव प्रत्येक परिस्थिति में रहता ही है। अतः परिस्थिति स्वभावतः ही अपूर्ण होती है। जो अपूर्ण है उसे सुखद स्वीकार करना अपूर्णता में आबद्ध होना है, जिसके परिणामस्वरूप प्राणी परिस्थितियों से अतीत जो अपना वास्तविक पूर्ण जीवन है उससे विमुख हो जाता है।

4. अवस्था से आशा– प्रत्येक अवस्था सीमित, परिवर्तनशील व विनश्वर है। अतः अवस्था में आबद्ध प्राणी अपने असीम अनन्त स्वभाव से विमुख हो जाता है। इस प्रकार वस्तु, परिस्थिति, अवस्था से अर्थात् अपने से भिन्न अन्य या पर से सुख की आशा करने से अथवा उसके सुख में आबद्ध होने से अथवा उसमें जीवन है ऐसा मानने से अथवा उनकी उपलब्धि के आधार पर अपना मूल्यांकन करने या महत्त्व आंकने से, प्राणी अपने वास्तविक स्वरूप से दूर हो जाता है। वास्तविकता से दूर हट जाना घोर दुःख का ही कारण है।

5. सुख–दुःख अन्य से न मानने से प्राप्त उपलब्धियाँ– अपने सुख–दुःख का कारण अन्य को मानने से होने वाली हानियाँ और अन्य को न मानने से होने वाली उपलब्धियाँ कुछ इस प्रकार हैं–

(क) अपने दुःख का कारण अन्य को न मानकर अपने को मानने से सजगता आती है और दुःख का निवारण करने में हम समर्थ और स्वाधीन बनते हैं। इस भावना से उत्साह जागृत होता है, जिससे प्रमाद मिटकर दुःख से मुक्ति पाने का पुरुषार्थ, पराक्रम प्रबल होता है।

(ख) जब व्यक्ति अपने दुःख का कारण किसी अन्य को नहीं मानता है तब उसके जीवन में से द्वेष की आग सदा के लिए बुझ जाती है। जिसके बुझने से हृदय में प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगता है और वैर भाव व द्वेष का नाश हो जाता है। जिससे निर्भयता, समता, मृदुता आदि दिव्य गुणों की अभिव्यक्ति स्वतः होती है, दिव्य जीवन का अवतरण होता है।

(ग) समस्त सृष्टि सुख–दुःख का समूह है। इसी कारण कोई भी प्राणी यहाँ दुःख से रहित नहीं है। इसलिए मानव को सुख–दुःख से अतीत के जीवन की अनुभूति के लिए

प्रयत्नशील होकर पुरुषार्थ करना चाहिए।

(घ) जो अपने आये हुए दुःख का कारण दूसरों को मान लेता है, उसका ध्यान दुःख के मूल हेतु की खोज की ओर नहीं जाता। वह सदा क्षुभित व खिन्न रहता है एवं दुःख से मुक्ति पाने में अपने को असमर्थ मान लेता है, जिससे वास्तविक जीवन की विस्मृति हो जाती है जो सर्वस्व विनाश की हेतु है। जब मानव अपने दुःख का कारण किसी अन्य को नहीं मानता तो उसे दुःख के मूल 'दोष' का बोध हो जाता है, जिससे दोष त्याग करने की सामर्थ्य स्वतः आ जाती है, जो विकास का मूल है।

(ङ) परिस्थिति की उपस्थिति कर्मों का फल है। प्रकृति की देन है, जिस पर किसी का अधिकार या वश नहीं चलता है, परन्तु परिस्थिति से सुखी-दुःखी होना या न होना यह मनुष्य के विवेक-अविवेक या भावों पर निर्भर करता है। अतः विवेकशील साधक भयंकर से भयंकर परिस्थिति में भी अपने को दुःखी नहीं करता है, अपितु उसे अपनी उन्नति का साधन बना लेता है एवं सब परिस्थितियों को परिवर्तनशील, अनित्य, अन्य, पर, अपूर्ण, अभावयुक्त समझकर परिस्थितियों से अपने को असंग कर लेता है, जिससे वह परिस्थिति, संसार और शरीर से अतीत आनन्द का अनुभव करता है।

(च) दुःख-सुख का कारण अन्य को मान लेने का परिणाम यह होता है कि हम अनुकूल परिस्थितियों की प्राप्ति के लिए अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं और जो परिस्थिति हमें प्राप्त है उसका सदुपयोग नहीं करते। इससे वस्तु, व्यक्ति आदि के हम दास हो जाते हैं। फलतः अनुकूल सुखद, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के प्रति राग और प्रतिकूल दुःखद वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के प्रति द्वेष करने लग जाते हैं। राग-द्वेष ग्रस्त व्यक्ति किसी के भी संबंध में सही निर्णय नहीं कर सकता। कारण कि जिसके प्रति राग हो जाता है उसके दोष दिखाई नहीं देते और जिसके प्रति द्वेष हो जाता है उसके गुण दिखाई नहीं देते। जब गुण-दोष का सही बोध नहीं होता तो निर्णय सही नहीं हो सकता। अतः हमें किसी के विषय में सही निर्णय सही नहीं हो सकता। अतः हमें किसी के विषय में सही निर्णय करना है तो अपने को राग-द्वेष से रहित करना होगा, तटस्थ बनना होगा। राग-द्वेष रहित होने के लिए यह अनिवार्य है कि हमें अपने सुख-दुःख का कारण किसी दूसरे को नहीं मानना होगा।

दोष का कारण-विषयेच्छा, भोगेच्छा-

पहले यह कहा गया है कि दुःख का कारण दोष है। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि व्यक्ति या प्राणी दोष करता ही क्यों है? तो कहना होगा कि सुखाभास में सुख मानने की भूल से दोष करता है। आभास उसे कहा जाता है कि जिसकी प्रतीति तो हो, परन्तु प्राप्ति

नहीं हो। जैसे ग्रीष्म ऋतु में रेगिस्तान में दिखाई देने वाली मृग-मरीचिका में जल की प्रतीति तो होती है, परन्तु जल की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार पदार्थों के भोग से सुख मिलता तो प्रतीत होता है, परन्तु वास्तव में भोग में सुख नहीं है। यदि भोग में सुख होता तो 1. भोग भोगते हुए निरन्तर प्राप्त होता रहता तथा 2. उसका संचय होता रहता और 3. अब तक ढेर सारा सुख संचित हो जाता। परन्तु हम सबका अनुभव है कि भोग से जो सुख मिलता प्रतीत होता है वह सुख एक क्षण भी नहीं रहता। दूसरे क्षण ही मिलने वाले सुख में कमी आ जाती है और वह कमी प्रतिक्षण बढ़ती जाती है और अन्त में वह सुख की प्रतीति भी क्षीण होकर लुप्त हो जाती है। यदि वस्तु या वस्तु के भोग से मिलने वाला सुख वास्तविक होता तो उस वस्तु के रहते वस्तु से संबंधित सभी व्यक्तियों को सुख मिलता और सदा मिलता रहता। परन्तु हम सबका अनुभव है कि ऐसा नहीं होता है, होता इसके विपरीत ही है। पूर्वोक्त ताजमहल देखने के सुख का ही उदाहरण लें। ताजमहल के पहरेदार, चौकीदार आदि को ताजमहल देखने से किंचित् भी सुख नहीं मिलता, फिर सबको सदा सुख मिलने की तो बात ही नहीं उठती। कामी पुरुष को जो स्त्री सौन्दर्य की मूर्ति दिखाई देती है, वही स्त्री उससे वैर रखने वाली स्त्री को चुड़ैल दिखायी देती है।

इस संबंध में एक तथ्य यह भी है कि विषयभोग में जो सुख मिलता प्रतीत होता है वह सुख भी भोग से नहीं मिलता है, अपितु कामना रहित होने से मिलता है। होता यह है कि इन्द्रिय ज्ञान के आधार पर जब प्राणी किसी वस्तु की प्राप्ति से सुख पाने की कल्पना करता है तो उसमें उस वस्तु के पाने की इच्छा या कामना उत्पन्न हो जाती है। इच्छा या कामना उत्पन्न होते ही उस कामना की पूर्ति नहीं हो जाती है, कामना पूर्ति के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता होती है उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न व परिश्रम करना पड़ता है, जिसके लिए समय अपेक्षित है। तात्पर्य यह है कि कामना पूर्ति हेतु वस्तु, श्रम व समय की अपेक्षा होती है।

अतः जितने समय तक कामना की पूर्ति नहीं होती तब तक अभाव रूप कामना अपूर्ति का दुःख भोगना पड़ता है। वस्तुतः वह दुःख भोग्य वस्तु के न मिलने से नहीं हुआ, क्योंकि वस्तु के न मिलने से दुःख होता तो वस्तु तो कामना उत्पत्ति से पूर्व भी नहीं थी, अतः उस समय भी वस्तु के न होने का दुःख होना चाहिये था, परन्तु कामना उत्पत्ति से पूर्व न तो वस्तु के अभाव का अनुभव हुआ और न अभावजन्य दुःख हुआ। आज हम में से प्रत्येक व्यक्ति के पास विश्व की अगणित वस्तुओं में से केवल कुछ गिनती की ही वस्तुएँ उपलब्ध हैं, शेष असंख्य वस्तुएँ नहीं हैं, फिर भी हमें उनके अभाव से दुःख नहीं होता है। अभावजन्य दुःख तब होता है जब वस्तुओं से सुख पाने की कामना उत्पन्न होती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि दुःख वस्तु के अभाव में नहीं है, प्रत्युत कामना की उत्पत्ति में है।

सच तो यह है कि दुःख वस्तु के अभाव से नहीं होता, अपितु अभाव के अनुभव से होता है। अभाव का अनुभव होता है कामना उत्पत्ति से। कामना उत्पत्ति होती है सुख पाने की इच्छा से। सुख पाने की इच्छा होती है सुखाभास को सुख मानने से। सुखाभास को सुख मानना भूल है, भ्रान्ति है। जो हमारे अपने ही स्वाभाविक व सनातन ज्ञान के अनादर या अविवेक का फल है। ज्ञान का अनादर ही अविवेक है। जो सुख रहता ही नहीं है अर्थात् जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसका अस्तित्व स्वीकार करना अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान रहित होना नहीं है, प्रत्युत जो नहीं है, उसे 'है' मानना है अथवा इन्द्रियजन्य अल्पज्ञान या अधूरे ज्ञान को ही सत्य व पूर्ण ज्ञान मान लेना है और बुद्धि ज्ञान रूप विवेक और निजज्ञान (जो स्वाभाविक व सनातन है) रूप प्रज्ञा का अनादर करना है।

आशय यह है कि ज्ञान के अनादर या अज्ञान से कामना की उत्पत्ति होती है। कामना उत्पन्न होने पर उस कामना की पूर्ति करने के लिए श्रम करना अपेक्षित होता है। श्रम के लिए शक्ति व समय अपेक्षित है। तात्पर्य यह है कि कामना उत्पन्न होते ही कामना की पूर्ति नहीं हो जाती, उसकी पूर्ति के लिए शक्ति व श्रम आवश्यक है और श्रम के लिए समय अपेक्षित है। अतः जितने समय तक कामना पूर्ति नहीं होती है उतने समय तक कामना अपूर्ति की अवस्था रहती है। कामना अपूर्ति की अवस्था में वस्तु के अभाव का अनुभव होता है, अभाव का अनुभव होना दुःख है। अतः कामना अपूर्ति की अवस्था में अभाव के अनुभव का दुःख भोगना पड़ता है। जब कामना पूर्ति हो जाती है तो यह दुःख मिट जाता है। दुःख के मिट जाने से सुख का अनुभव होता है, क्योंकि यह देखा जाता है कि भले ही वस्तु मिले या न मिले विवेक से या अन्य किसी कारण से कामना का त्याग कर दिया जाये तो कामना अपूर्ति का दुःख मिट कर शांति के सुख का अनुभव होने लगता है।

अतः 'सुख' कामना पूर्ति के समय प्राप्त होने वाली वस्तु, परिस्थिति आदि में नहीं है, अपितु कामना के अभाव में है। प्राणी से भूल यह होती है कि जो सुख कामना के न रहने से, कामना के अभाव से होता है उसे वह कामना पूर्ति से मिली वस्तु से मान लेता है। इस मान्यता से अपने सुख-दुःख का कारण वह वस्तु या अन्य को मान लेता है, फलतः वह सुख पाने के लिए वस्तु, व्यक्ति की प्राप्ति हेतु बार-बार नवीन कामनाएँ करता रहता है और कामना अपूर्ति का तथा श्रमजन्य थकान का दुःख भोगता रहता है। यदि किसी प्रकार अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो गई और उससे कामना पूर्ति हो गई तब भी उसे सुख मिलता प्रतीत होता है वह प्रतीयमान सुख भी नहीं रहता है। यदि वस्तु में सुख होता तो अवश्य सुख रहता। जब वस्तु में सुख है ही नहीं, तो क्या रहेगा? अतः वस्तु या अन्य से सुख की उपलब्धि मानना भूल है।

यदि वस्तु में सुख होता तो प्रथम बात तो यह होती कि जिसके पास वस्तुओं का

जितना अधिक संग्रह है, उसे उतना ही अधिक सुख मिलता और संग्रहहीन बालक, संन्यासी और गरीब व्यक्ति को किंचित् भी सुख नहीं मिलता, परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता। देखा तो यह जाता है कि दुःख या अशांति से छुटकारा पाने के लिए नींद की गोलियाँ अधिक संग्रही व्यक्ति को ही खानी पड़ती हैं। दूसरी बात यह है कि प्राप्त वस्तु प्राप्तिकर्ता से अभिन्न नहीं हो पाती। वस्तु और उसके प्राप्तिकर्ता में दूरी सदैव बनी रही रहती है तथा उस वस्तु से सुख जैसी कोई शक्ति या तरंग निकल कर आती हो, ऐसी बात भी नहीं है। तीसरी बात यह है कि वस्तु के न होने पर भी असंख्य व्यक्ति सुखी दिखाई देते हैं। चौथी बात यह है कि जब तक हम में कामना की उत्पत्ति नहीं हुई थी, तब तक हम भी उस वस्तु के न होने से दुःखी नहीं थे। इन सब बातों से यह फलित होता है कि वस्तु की प्राप्ति के साथ सुख की प्राप्ति का कोई भी संबंध नहीं है।

यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि दुःख पाना कोई भी नहीं चाहता, फिर दुःख का कर्ता अपने को कैसे माना जाय? तो कहना होगा कि दुःख का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। दुःख की प्रतीति होती है सुख पाने की इच्छा की अपूर्ति से। अतः दुःख वही पाता है जो सुख का भोगी है। वस्तुतः दुःख का कारण है सुख का भोग, सुख की दासता। सुख की दासता अन्य किसी की देन नहीं है, स्वयं अपनी ही उपज है। यह नियम है कि जिसे अनुकूलता में सुख की प्रतीति होती है उसे ही प्रतिकूलता में दुःख होता है। अतः दुःख का कारण प्राणी की स्वयं की विषय-सुख चाहने की इच्छा है। दुःख से मुक्ति पाने का उपाय है सुखभोग का त्याग। सुखभोग का त्याग करने पर व्यक्ति का दुःख-सुख से अतीत के जगत् में सदा के लिए प्रवेश हो जाता है। जहाँ अक्षय, अव्याबाध, अनन्त रस का सागर सदा लहराता रहता है, परन्तु इस रहस्य को वे ही साधक जानते हैं जिन्होंने विनाशी सुख (सुखाभास) का सर्वथा त्याग कर दिया है। विषय-सुख के त्याग अर्थात् दुःख-मुक्ति का उपाय है विषय-भोगों के प्रति विरक्त होना। जो इनसे विरक्त होता है वह अवश्य दुःखमुक्त हो जाता है।

-82/127, नीलगिरी पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राज.)

क्षमा प्रदान की

1. मुनि गजसुकुमाल ने	-	सोमिल ब्राह्मण को
2. अर्जुन अणगार ने	-	मृतकों के परिजनों को
3. मेतार्य मुनि ने	-	स्वर्णकार को
4. राजा उदायन ने	-	राजा चण्ड प्रद्योतन को
5. भगवान् महावीर ने	-	संगम देव, ग्वाले एवं चण्ड कौशिक सर्प को
6. राजा परदेशी ने	-	रानी सूर्यकान्ता (पत्नी) को-

श्री पीरचन्द चोरडिया, नयाबास, माणक चौक, जोधपुर-342001 (राज.)

शोधालेख

जैन दर्शन का नयसिद्धांत

प्रो. सागरमल जैन

कथन का वाच्यार्थ और नय

शब्दों अथवा कथन के सही अर्थ को समझने के लिए यह आवश्यक है कि श्रोता न केवल वक्ता के शब्दों की ओर जाये, अपितु उसके अभिप्राय को भी समझने का प्रयत्न करे। अनेक बार समान पदावली के वाक्य भी वक्ता के अभिप्राय, वक्ता की कथनशैली और तात्कालिक सन्दर्भ के आधार पर भिन्न अर्थ के सूचक हो जाते हैं। वक्ता के अभिप्राय को समझने के लिए जैन आचार्यों ने नय और निक्षेप ये दो सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। नय और निक्षेप के सिद्धान्तों का मूलभूत उद्देश्य यही है कि श्रोता वक्ता के द्वारा कहे गये शब्दों अथवा कथनों का सही अर्थ जान सके। नय की परिभाषा करते हुए जैन आचार्यों ने कहा है कि 'वक्ता' के कथन का अभिप्राय ही नय कहा जाता है। कथन के सम्यक् अर्थ निर्धारण के लिए वक्ता के अभिप्राय को एवं तात्कालिक सन्दर्भ को ध्यान में रखना आवश्यक है। नय सिद्धान्त हमें वह पद्धति बताता है, जिसके आधार पर वक्ता के आशय एवं कथन के तात्कालिक सन्दर्भ (Context) को सम्यक् प्रकार से समझा जा सकता है। जैन दर्शन में नय और निक्षेप की अवधारणाएँ स्याद्वाद और सप्तभंगी के विकास के भी पूर्व की हैं। तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम अध्याय में हमें नय एवं निक्षेप की अवधारणाएँ स्पष्ट रूप में उपलब्ध हो जाती हैं, जबकि वहाँ स्याद्वाद और सप्तभंगी की स्पष्ट अवधारणा अनुपस्थित है। तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवें अध्याय का 'अर्पितानार्पितसिद्धे' सूत्र भी मूलतः नय-सिद्धान्त अर्थात् सामान्य एवं विशेष दृष्टि का ही सूचक है। आगमिक विभज्यवाद एवं दार्शनिक नयवाद की अवधारणा के आधार पर ही आगे स्याद्वाद और सप्तभंगी का विकास हुआ है। यदि हम गम्भीरतापूर्वक देखें तो जैनों के नय, निक्षेप, स्याद्वाद और सप्तभंगी- इन सभी सिद्धान्तों का सम्बन्ध भाषा-दर्शन एवं अर्थ-विज्ञान (Science of meaning) से है।

नयों की अवधारणा को लेकर जैनाचार्यों ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि वक्ता का अभिप्राय अथवा वक्ता की कथन शैली या अभिव्यक्ति-शैली ही नय है तो फिर नयों के कितने प्रकार होंगे? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य सिद्धसेन द्वारा कहा गया है कि जितने वचन-पथ (कथन करने की शैलियाँ) हो सकते हैं, उतने ही नयवाद हो सकते हैं। वस्तुतः नयवाद भाषा के अर्थ विश्लेषण का सिद्धान्त है। भाषायी अभिव्यक्ति के जितने

प्रारूप हो सकते हैं उतने ही नय हो सकते हैं, फिर भी मोटे रूप से जैन दर्शन में दो, पाँच और सप्त नयों की अवधारणा मिलती है। यद्यपि इन सात नयों के अतिरिक्त निश्चय नय और व्यवहार नय तथा द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय का भी उल्लेख जैन ग्रन्थों में है, किन्तु ये नय मूलतः तत्त्वमीमांसा या अध्यात्मशास्त्र से सम्बन्धित हैं। जबकि नैगम आदि सप्त नय मूलतः भाषा-दर्शन से सम्बन्धित है।

नय और निक्षेप दोनों ही सिद्धान्त यद्यपि शब्द एवं कथन के वाच्यार्थ (Meaning) का निर्णय करने से सम्बन्धित हैं, फिर भी दोनों में अन्तर है। निक्षेप मूलतः शब्द के अर्थ का निश्चय करता है, जबकि नय वाक्य या कथन के अर्थ का निश्चय करता है। जैन दर्शन में नयों का विवेचन तीन रूपों में मिलता है- (1) निश्चयनय और व्यवहारनय, (2) द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय तथा (3) नैगमादि सप्तनय। भगवतीसूत्र आदि आगमों में नयों के प्रथम एवं द्वितीय वर्गीकरण ही वर्णित हैं, जबकि समवायांग, अनुयोगद्वार, नन्दीसूत्र एवं तत्त्वार्थसूत्र में नयों का तृतीय वर्गीकरण नैगमादि के रूप में पाया जाता है, इसका भाष्य नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र एवं शब्द ऐसे पाँच नयों का उल्लेख करता है, जबकि सवार्थसिद्धि ग्रन्थ नैगम आदि सात नयों का उल्लेख करता है। निश्चय और व्यवहार नय मूलतः ज्ञानपरक दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। वे वस्तु स्वरूप के विवेचन की शैलियाँ हैं, जबकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय वस्तु के शाश्वत पक्ष और परिवर्तनशील पक्ष का विचार करते हैं। सप्त नयों की चर्चा में जहाँ तक नैगमादि प्रथम चार नयों का प्रश्न है, वे मूलतः वस्तु के सामान्य और विशेष स्वरूप की चर्चा करते हैं। जबकि शब्दादि तीन नय वस्तु का कथन किस प्रकार से किया गया है- यह बताते हैं।

निश्चयनय और व्यवहारनय

ज्ञान की प्राप्ति के तीन साधन हैं- (1) अपरोक्षानुभूति, (2) इन्द्रियजन्यानुभूति और (3) बुद्धि। इनमें अपरोक्षानुभूति या आत्मानुभूति निश्चयनय की और इन्द्रियानुभूति या बुद्धि व्यवहारनय की प्रतीक है। तत्त्वमीमांसा में सत् के स्वरूप की व्याख्या प्रमुख रूप से निश्चय और व्यवहार- इन दो दृष्टिकोणों के आधार पर होती है। जैन दर्शन के अनुसार सत् अपने आप में एक पूर्णता है, अनन्तता है। इन्द्रियानुभूति, बुद्धि, भाषा और वाणी, अपनी-अपनी सीमा के कारण अनन्त गुण धर्मात्मक सत् के एकांश का ही ग्रहण कर पाते हैं, यही एकांश का बोध नय कहलाता है। दूसरे शब्दों में सत् के अनन्त पक्षों को जिन-जिन दृष्टिकोणों से देखा जाता है, वे सभी नय कहलाते हैं।

नयों का स्वरूप

जैन दार्शनिकों का कहना है कि सत् की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के जितने प्रारूप

(कथन के ढ़ंग) हो सकते हैं, उतने ही नय, अथवा दृष्टिकोण हो सकते हैं। वैसे तो जैन दर्शन में नयों की संख्या अनन्त मानी गई है, लेकिन मोटे तौर पर नयों के दो भेद किये जाते हैं- जिन्हें 1. निश्चयनय और 2. व्यवहारनय कहते हैं। निश्चयनय और व्यवहारनय में सभी नयों का अन्तर्भाव हो जाता है। भगवतीसूत्र में इन दोनों नयों का प्रतिपादन बड़े ही रोचक रूप में किया गया है- गौतमस्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं कि भगवन्! प्रवाही गुड़ में कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं? प्रभु महावीर कहते हैं कि गौतम! मैं इस प्रश्न का उत्तर दो नयों से देता हूँ। व्यवहारनय से तो वह मधुर कहा जाता है, लेकिन निश्चयनय से उसमें पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श होते हैं। वस्तुतः निश्चय और व्यवहार दृष्टियों का विश्लेषण यह बताता है कि वस्तु तत्त्व न केवल उतना ही है, जितना इन्द्रियों के माध्यम से वह हमें प्रतीत होता है अथवा बुद्धि उसके स्वरूप का निश्चय कर पाती है। सत् स्वरूप को समझने के लिए इन्द्रियानुभूतिजन्य ज्ञान और बुद्धिजन्य ज्ञान उसके व्यावहारिक पक्ष को ही पकड़ पाते हैं, क्योंकि बुद्धि भी भाषा पर आधारित है और भाषा का शब्द भण्डार अति सीमित है। इसी प्रकार अपरोक्षानुभूति या आत्मिक अनुभूति भाषा और बुद्धि निरपेक्ष होती है। जिसे अन्तर्दृष्टि या प्रज्ञा कहा जाता है। निश्चयनय अपरोक्षानुभूति और व्यवहारनय इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक ज्ञान पर निर्भर करता है। इस प्रकार व्यवहारनय भी इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक विमर्श दोनों की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार जैन दर्शन में ज्ञान और उसकी अभिव्यक्ति के इन्द्रियानुभूतिजन्यज्ञान, बौद्धिकज्ञान और आत्मिकज्ञान रूप तीन विभाग भी किये गये हैं। ठीक इसी प्रकार बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद में भी परिकल्पित, परतंत्र और परिनिष्पन्न- ऐसे ज्ञान के तीन भेद किये गये हैं। बौद्ध दर्शन का शून्यवाद भी इसे मिथ्या संवृत्ति, तथ्य संवृत्ति और परमार्थ- ऐसे तीन रूपों में व्यक्त करता है। आचार्य शंकर ने भी इन्हें ही प्रतिभासित सत्य, व्यवहारिक सत्य और पारमार्थिक सत्य ऐसे तीन विभागों में बाँटा है। इन्द्रियानुभूति और बौद्धिक ज्ञान व्यवहार पक्ष को प्रधानता देते हैं, अतः इनको मिला देने पर दो विधाएँ ही शेष रहती हैं- व्यवहार (व्यवहारनय) और परमार्थ (निश्चयनय)।

पाश्चात्त्य-परम्परा में भी निश्चयनय और व्यवहारनय रूप ज्ञान की विधाएँ

न केवल भारतीय दर्शनों में, वरन् पाश्चात्त्य दर्शनों में भी प्रमुख रूप से व्यवहार और परमार्थ के दृष्टिकोण स्वीकृत रहे हैं। डॉ. चन्द्रधर शर्मा के अनुसार पश्चिमी दर्शनों में भी व्यवहार और परमार्थ दृष्टिकोणों का यह अन्तर सदैव ही माना जाता रहा है। विश्व के सभी महान् दार्शनिकों ने इसे किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। हेराक्लिटस के Kato और Ano, पारमेनीडीज के मत (Opinion) और सत्य (Truth), सुकरात के मत में रूप और

आकार (Word and Form), प्लेटो के दर्शन में संवेदन (Sense) और प्रत्यय (Idea), अरस्तू के पदार्थ (Matter) और चालक (Mover), स्पिनोजा के द्रव्य (Substance) और पर्याय (Modes), कांट के प्रपंच (Phenomenal) और तत्त्व, हेगल के विपर्यय और निरपेक्ष तथा ब्रैडले के आभास (Appearance) और सत् (Reality) किसी न किसी रूप में उसी व्यवहार और परमार्थ की धारणा को स्पष्ट करते हैं। भले ही इनमें नामों की भिन्नता हो, लेकिन उनके विचार इन्हीं दो दृष्टिकोणों की ओर संकेत करते हैं।

यहाँ यह जान लेना चाहिए कि जहाँ तक व्यवहार का प्रश्न है, उसके ज्ञान के साधन इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हैं, और ये तीनों सीमित और सापेक्ष हैं। इसलिए समस्त व्यावहारिक ज्ञान सापेक्ष होता है। जैन दार्शनिकों का कथन है कि एक भी कथन और उसका अर्थ ऐसा नहीं है जो नय शून्य हो, सारा ज्ञान दृष्टिकोणों पर आधारित है, यही दृष्टिकोण मूलतः निश्चयनय और व्यवहारनय कहे जाते हैं।

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में निश्चयनय और व्यवहारनय का अर्थ

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में निश्चयदृष्टि सत् के उस स्वरूप का प्रतिपादन करती है, जो सत् की त्रिकालाबाधित स्वभावदशा और स्वलक्षण है, जो पर्याय या परिवर्तनों में भी सत्ता के सार के रूप में बनी रहती है। निश्चयदृष्टि अभेदगामी सत्ता के शुद्धस्वरूप या स्वभावदशा की सूचक है और उसके पर-निरपेक्ष स्वरूप की व्याख्या करती है। जबकि व्यवहारनय प्रतीति को आधार बनाता है, अतः वह वस्तु के पर-सापेक्ष स्वरूप का विवेचन करता है। निश्चयनय वस्तु या आत्मा के शुद्ध स्वरूप या स्वभाव लक्षण का निरूपण करता है जो पर से निरपेक्ष होता है। जबकि व्यवहारनय पर-सापेक्ष प्रतीति रूप वस्तु स्वरूप को बताता है। आत्मा कर्म-निरपेक्ष शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त है- यह निश्चय नय का कथन है, जबकि व्यवहारनय कहता है कि संसार दशा में आत्मा कर्ममल से लिप्त है, राग-द्वेष एवं काषायिक भावों से युक्त है। पानी स्व-स्वरूपतः शुद्ध है, यह निश्चयनय है। पानी में कचरा है, मिट्टी है वह गन्दा है यह व्यवहारनय है।

तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारदृष्टि सत्ता के उस पक्ष का प्रतिपादन करती है, जिस रूप में वह प्रतीत होती है। व्यवहारदृष्टि भेदगामी है और सत् के आगन्तुक लक्षणों या विभावदशा की सूचक है। सत् के परिवर्तनशील पक्ष का प्रस्तुतीकरण व्यवहारनय का विषय है। व्यवहारनय देश और काल सापेक्ष है। व्यवहारदृष्टि के अनुसार आत्मा जन्म भी लेती है और मरती भी है, वह बन्धन में भी आती है और मुक्त भी होती है।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय

जैन दर्शन के अनुसार सत्ता अपने आप में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है। उसका

ध्रौव्य (स्थायी) पक्ष अपरिवर्तनशील है और उसका उत्पाद-व्यय का पक्ष परिवर्तनशील है। सत्ता के अपरिवर्तनशील पक्ष को द्रव्यार्थिक नय और परिवर्तनशील पक्ष को पर्यायार्थिक नय कहा जाता है। पाश्चात्त्य दर्शनों में सत्ता के उस अपरिवर्तनशील पक्ष को Being और परिवर्तनशील को Becoming भी कहा गया है। सत्ता का वह पक्ष जो तीनों कालों में एक रूप रहता है, जिसे द्रव्य भी कहते हैं उसका बोध द्रव्यार्थिक नय से होता है, और सत्ता का वह पक्ष जो परिवर्तित होता रहता है उसे पर्याय कहते हैं, उसका कथन पर्यायार्थिक नय ही है। ज्ञान-मीमांसा की दृष्टि से यह परिवर्तनशील पक्ष भी दो रूपों में काम करता है, जिन्हें स्वभाव पर्याय और विभाव पर्याय के रूप में जाना जाता है। स्वभाव पर्याय तत्त्व के निजगुणों के कारण होती है, एवं अन्य तत्त्वों से निरपेक्ष होती है, इसके विपरीत विभाव पर्याय अन्य तत्त्व से सापेक्ष पर्याय होती है। आत्मा में ज्ञाता द्रष्टा भाव या ज्ञाता द्रष्टा की अवस्था स्वभाव पर्याय रूप होती है। क्रोधादिभाव विभाव पर्यायरूप होते हैं। परिवर्तनशील स्वभाव एवं विभाव पर्यायों का कथन व्यवहार नय से होता है। जबकि सत्तारूप आत्मा के ज्ञाता द्रष्टा नामक गुण का कथन निश्चय नय से होता है।

नैगम आदि सप्तनय

यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत एक परवर्ती घटक है। तत्त्वार्थसूत्र के भाष्य में नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्दनय ऐसे पाँच भेद किये गये हैं। ये पाँचों भेद दिगम्बर परम्परा के षट्खण्डागम में भी उल्लिखित हैं। तत्त्वार्थसूत्र के भाष्य में उसके पश्चात् नैगमनय के दो भेद और शब्दनय के तीन भेद भी किये गये हैं। परवर्तीकाल में शब्द नय के इन भेदों को मूल-पाठ में समाहित करके सर्वार्थसिद्धि में नयों के नैगम आदि सप्त नयों की चर्चा की गई है। दिगम्बर परम्परा इस सर्वार्थसिद्धि मान्य पाठ को आधार मानकर इन सात नयों की ही चर्चा करती है। वर्तमान में तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में इन सप्तनयों की चर्चा ही मुख्य रूप से मिलती है। इन सात नयों में नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्र इन चार नयों को अर्थनय अर्थात् वस्तु स्वरूप का विवेचन करने वाले नय और शब्द, समभिरूढ़ तथा एवंभूत इन तीन नयों को शब्दनय अर्थात् वाच्य के अर्थ का विश्लेषण करने वाले नय कहा गया है। अर्थनय का संबंध वाच्य-विषय (वस्तु) से होता है। अतः ये नय अपने वाच्य विषय की चर्चा सामान्य और विशेष इन पक्षों के आधार पर करते हैं। जबकि शब्दनय का संबंध वाच्यार्थ (Meaning) से होता है। आगे हम इन नैगम आदि सप्तनयों की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

नैगमनय- इन सप्त नयों में सर्वप्रथम नैगमनय आता है। नैगमनय मात्र वक्ता के संकल्प को ग्रहण करता है। नैगमनय की दृष्टि से किसी कथन के अर्थ का निश्चय उस संकल्प अथवा

साध्य के आधार पर किया जाता है, जिसे वक्ता बताना चाहता है। नैगममय सम्बन्धी प्रकथनों में वक्ता की दृष्टि सम्पादित की जाने वाली क्रिया के अन्तिम साध्य की ओर होती है। वह कर्म के तात्कालिक पक्ष पर ध्यान न देकर कर्म के प्रयोजन की ओर ध्यान देती है। प्राचीन आचार्यों ने नैगमनय का उदाहरण देते हुए बताया है कि जब कोई व्यक्ति स्तम्भ के लिए किसी जंगल में लकड़ी लेने जाता है और उससे जब पूछा जाता है कि भाई तुम किसलिए जंगल जा रहे हो? तो वह कहता है मैं स्तम्भ लेने जा रहा हूँ। वस्तुतः वह जंगल से स्तम्भ नहीं अपितु स्तम्भ बनाने की लकड़ी ही लाता है। लेकिन उसका संकल्प या प्रयोजन स्तम्भ बनाना ही है। अतः वह अपने प्रयोजन को सामने रखकर वैसा ही कथन करता है। हमारी व्यावहारिक भाषा में ऐसे अनेक कथन होते हैं, जब हम अपने भावी संकल्प के आधार पर वर्तमान व्यवहार का प्रतिपादान करते हैं। डॉक्टरी में पढ़ने वाले विद्यार्थी को उसके भावी लक्ष्य की दृष्टि से डॉक्टर कहा जाता है। नैगमनय के कथनों का वाच्यार्थ भूत पर आधारित भविष्यकालीन साध्य या संकल्पों के अनुसार होता है। जैसे- प्रत्येक भाद्रकृष्णा अष्टमी को कृष्णजन्माष्टमी कहा जाता है। यहाँ वर्तमान में भूतकालीन घटना का उपचार किया गया है।

संग्रहनय– भाषा के क्षेत्र में अनेक बार हमारे कथन व्यष्टि को गौण कर समष्टि के आधार पर होते हैं। जैनाचार्यों के अनुसार जब विशेष या भेदों की उपेक्षा करके मात्र सामान्य लक्षणों या अभेद के आधार पर कोई कथन किया जाता है तो वह संग्रहनय का कथन माना जाता है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति यह कहे कि 'भारतीय गरीब हैं।' तो उसका यह कथन व्यक्ति विशेष पर लागू न होकर सामान्यरूप से समग्र भारतीय जनसमाज का वाचक होता है। प्रज्ञापना सूत्र में यह प्रश्न उठाया गया है कि जाति प्रज्ञापनीय भाषा सत्य मानी जाये अथवा असत्य मानी जाये या व्यक्ति विशेष के आधार पर सत्य या असत्य मानी जाये। जाति प्रज्ञापनीय भाषा में समग्र जाति के सम्बन्ध में गुण, स्वभाव आदि का प्रतिपादन होता है, किन्तु ऐसे कथनों में अपवाद की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता। सामान्य या जाति के सम्बन्ध में किये गये कथन कभी व्यक्ति के सम्बन्ध में सत्य भी होते हैं और कभी असत्य भी होते हैं। अतः यह प्रश्न भी उठ सकता है कि यदि उस कथन के अपवाद उपस्थित हैं तो उसे सत्य किस आधार पर कहा जाय? उदाहरण के लिए यदि कोई कहे कि स्त्रियाँ भीरू (डरपोक) होती हैं तो यह कथन सामान्यतया स्त्री जाति के सम्बन्ध में तो सत्य माना जा सकता है, किन्तु किसी स्त्री विशेष के सम्बन्ध में यह सत्य ही हो, ऐसा आवश्यक नहीं है। अतः संग्रह नय के आधार पर किये गए कथन जैसे- भारतीय गरीब हैं अथवा स्त्रियाँ भीरू होती हैं, समष्टि के सम्बन्ध में ही सत्य हो सकते हैं, उन्हें उस जाति के प्रत्येक

सदस्य के बारे में सत्य नहीं कहा जा सकता है। यदि कोई इस सामान्य वाक्य से यह निष्कर्ष निकाले कि सभी भारतीय गरीब हैं और बिड़ला भारतीय है, इसलिए बिड़ला गरीब है, तो उसका यह निष्कर्ष सत्य नहीं होगा। सामान्य या समष्टिगत कथनों का अर्थ समुदाय रूप से ही सत्य होता है। यह समष्टि या जाति के पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के सम्बन्ध में सत्य भी हो सकता है और असत्य भी हो सकता है। संग्रहनय हमें यही संकेत करता है कि समष्टिगत कथनों के तात्पर्य को समष्टि के सन्दर्भ में ही समझने का प्रयत्न करना चाहिए और उसके आधार पर उस समष्टि के प्रत्येक सदस्य के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए।

व्यवहारनय– व्यवहारनय सामान्य गर्भित विशेष पर बल देता है। व्यवहारनय को हम उपयोगितावादी दृष्टि भी कह सकते हैं। वैसे जैन आचार्यों ने इसे व्यक्तिप्रधान दृष्टिकोण भी कहा है। अर्थ-प्रक्रिया के सम्बन्ध में यह नय हमें बताता है कि कुछ व्यक्तियों के सन्दर्भ में निकाले गए निष्कर्षों एवं कथनों को समष्टि के अर्थ में सत्य नहीं माना जाना चाहिए। साथ ही व्यवहारनय कथन के शब्दार्थ पर न जाकर वक्ता की भावना या लोकपरम्परा (अभिसमय) को प्रमुखता देता है। व्यवहार भाषा के अनेक उदाहरण हैं। जब हम कहते हैं कि घी के घड़े में लड्डू रखे हैं, यहाँ घी के घड़े का अर्थ ठीक वैसा नहीं है जैसा कि मिट्टी के घड़े का अर्थ है। यहाँ घी के घड़े का तात्पर्य वह घड़ा है जिसमें पहले घी रखा जाता था।

ऋजुसूत्रनय– ऋजुसूत्रनय को मुख्यतः पर्यायार्थिक दृष्टिकोण का प्रतिपादक कहा जाता है और उसे बौद्ध दर्शन का समर्थक बताया जाता है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान स्थितियों को दृष्टि में रखकर कोई प्रकथन करता है। उदाहरण के लिए 'भारतीय व्यापारी प्रामाणिक नहीं है' यह कथन केवल वर्तमान सन्दर्भ में ही सत्य हो सकता है। इस कथन के आधार पर हम भूतकालीन और भविष्यकालीन भारतीय व्यापारियों के चरित्र का निर्धारण नहीं कर सकते। ऋजुसूत्रनय हमें यह बताता है कि उसके आधार पर कथित कोई भी वाक्य अपने तात्कालिक सन्दर्भ में ही सत्य होता है, अन्य कालिक सन्दर्भों में नहीं। जो वाक्य जिस कालिक सन्दर्भ में कहा गया है, उसके वाक्यार्थ का निश्चय उसी कालिक सन्दर्भ में होना चाहिए।

शब्दनय– नय सिद्धान्त के उपर्युक्त चार नय मुख्यतः शब्द के वाच्य-विषय (अर्थ) से सम्बन्धित हैं, जब कि शेष तीन नयों का सम्बन्ध शब्द के वाच्यार्थ (Meaning) से है। शब्दनय यह बताता है कि शब्दों का वाच्यार्थ उनकी क्रिया या विभक्ति के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए 'बनारस भारत का प्रसिद्ध नगर था' और 'बनारस भारत का प्रसिद्ध नगर है' इन दोनों वाक्यों में बनारस शब्द का वाच्यार्थ भिन्न-भिन्न है। एक भूतकालीन बनारस की बात कहता है तो दूसरा वर्तमानकालीन। इसी प्रकार 'कृष्ण

ने मारा'। इसमें कृष्ण का वाच्यार्थ कृष्ण नामक वह व्यक्ति है जिसने किसी को मारने की क्रिया सम्पन्न की है। जबकि 'कृष्ण को मारा'। इसमें कृष्ण का वाच्यार्थ वह व्यक्ति है जो किसी के द्वारा मारा गया है। शब्दनय हमें यह बताता है कि शब्द का वाच्यार्थ कारक, लिंग, उपसर्ग, विभक्ति, क्रिया-पद आदि के आधार पर बदल जाता है।

समभिरूढ़नय- भाषा की दृष्टि से समभिरूढ़नय यह स्पष्ट करता है कि अभिसमय या रूढ़ि के आधार पर एक ही वस्तु के पर्यायवाची शब्द यथा- नृप, भूपति, भूपाल, राजा आदि अपने व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ के सूचक हैं। जो मनुष्य का पालन करता है, वह नृप कहा जाता है। जो भूमि का स्वामी होता है, वह भूपति होता है। जो शोभायमान होता है वह राजा कहा जाता है। इस प्रकार पर्यायवाची शब्द अपना अलग-अलग वाच्यार्थ रखते हुए भी अभिसमय या रूढ़ि के आधार पर एक ही वस्तु के वाचक मान लिए जाते हैं, किन्तु यह नय पर्यायवाची शब्दों यथा- इन्द्र, शक्र, पुरन्दर में व्युत्पत्ति की दृष्टि से अर्थ-भेद मानता है।

एवंभूतनय- एवंभूतनय शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण मात्र उसके व्युत्पत्तिपरक अर्थ के आधार पर करता है। उदाहरण के लिए कोई राजा जिस समय शोभायमान हो रहा है उसी समय राजा कहा जा सकता है। एक अध्यापक उसी समय अध्यापक कहा जा सकता है जब वह अध्यापन का कार्य करता है। यद्यपि व्यवहार जगत् में इससे भिन्न प्रकार के ही शब्द प्रयोग किये जाते हैं। जो व्यक्ति किसी समय अध्यापन करता था अपने बाद के जीवन में वह चाहे कोई भी पेशा अपना ले 'मास्टर जी' के ही नाम से जाना चाहता है। इस नय के अनुसार जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, गुणवाचक, संयोगी-द्रव्य-शब्द आदि सभी शब्द मूलतः क्रियावाचक हैं। शब्द का वाच्यार्थ क्रिया शक्ति का सूचक है। अतः शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण उसकी क्रिया के आधार पर करना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन आचार्यों का नय-सिद्धान्त यह प्रयास करता है कि वाक्य प्रारूपों के आधार पर कथनों का श्रोता के द्वारा सम्यक् अर्थ ग्रहण किया जाय। वह यह बताता है कि किसी शब्द अथवा वाक्य का अभिप्रेत अर्थ क्या होगा। यह बात उस कथन के प्रारूप पर निर्भर करती है जिसके आधार पर वह कथन किया गया है। नय-सिद्धान्त यह भी बतलाता है कि कथन के वाच्यार्थ का निर्धारण भाषायी संरचना एवं वक्ता की अभिव्यक्ति शैली पर आधारित है और इसलिए यह कहा गया है कि जितने वचन पथ हैं उतने ही नयवाद हैं। नय-सिद्धान्त शब्द के वाच्यार्थ का निर्धारण ऐकान्तिक दृष्टि से न करके उस समग्र परिप्रेक्ष्य में करता है जिसमें वह कहा गया है।

-निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (मध्यप्रदेश)

प्रासङ्गिक

भगवान महावीर का जीवन

डॉ. हेमलता जैन (ललवाणी)

भगवान महावीर ने अनेक जन्मों तक शुभ कर्मों का भगीरथ प्रयास किया और सिद्धार्थ पुत्र वर्धमान के भव में पूर्ण बोधि प्राप्त की। इस जन्म के पूर्व वे देवयोनि, मनुष्ययोनि, तिर्यञ्चयोनि और नरकयोनि में भी उत्पन्न हुए। जैन परम्परानुसार प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनने की योग्यता रखती है। विशिष्ट क्रियाओं के माध्यम से ही जीव का तीर्थंकर अथवा भगवान के रूप से जन्म होता है। जैन धर्म उत्तारवादी धर्म है।[1] यहाँ मुक्त आत्मा का अवतार अथवा पुनः जन्म स्वीकार नहीं किया गया। जीव जब तक मुक्त नहीं होता तब तक जन्म-मरण करता रहता है। जैनागम ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार तीर्थंकर पद जैसी विशिष्ट पुण्य प्रकृति बीस स्थानों की उत्कृष्ट साधना का परिणाम होती है। ये बीस स्थान हैं-

अरिहंत-सिद्ध-पवयण-गुरु-थेर-बहुस्सुए- तवस्सिसुं।
वच्छलया य एसिं, अभिक्खनाणोवओगे य।
दंसण विणए आवस्सए, य सीलव्वए निरइयारो।
खणलव तवच्चियाए, वेयावच्चे समाही य।
अप्पुव्वनाण गहणे, सुयभत्ती पवयणे पहावणया।
एएहिं कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो।[2]

अर्थात् 1. अरिहंत की भक्ति, 2. सिद्ध की भक्ति, 3. प्रवचन (श्रुतज्ञान) की भक्ति, 4. गुरु, 5. स्थविर, 6. बहुश्रुत, 7. तपस्वी मुनि की भक्ति करना, 8. निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखना, 9. निर्दोष सम्यक्त्व का पालन करना, 10. गुणवानों का विनय करना, 11. विधिपूर्वक षडावश्यक करना, 12. शील और व्रत का निर्दोष पालन करना, 13. क्षणलव काल में संवेग या वैराग्य का अनुभव करना, 14. शक्तिपूर्वक तप और त्याग करना, 15 चतुर्विध संघ में समाधि उत्पन्न करना, 16. व्रतियों की सेवा करना, 17. अपूर्वज्ञान का अभ्यास, 18. वीतराग के वचनों पर श्रद्धा करना, 19. सुपात्र दान करना, 20. जिनशासन की प्रभावना करना।

इन बीस स्थानों में से किसी भी एक या दो स्थान की उत्कृष्ट साधना से तीर्थंकर बनने की योग्यता अर्जित हो जाती है। उमास्वाति ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में तीर्थंकर पद प्राप्ति की सोलह कारण भावनाओं का उल्लेख किया है।[3]

पूर्वभव–

भगवान महावीर के जीव ने नयसार के भव में सत्कर्म का बीज डाला और उसका कई जन्मों तक सिंचन करते हुए वर्धमान के भव में तीर्थंकर पद की प्राप्ति की। ग्रामचिन्तक नयसार के भव में भगवान महावीर के जीव ने भूख-प्यास से पीड़ित मुनि को भक्तिपूर्वक निर्दोष आहार प्रदान कर आत्म-कल्याण के उपदेश को सुना। फलस्वरूप वहीं सम्यक्त्व प्राप्त कर भव-भ्रमण को परिमित कर लिया। यही जीव अपने दूसरे, चौथे, सातवें, नौवें, ग्यारहवें, तेरहवें, पन्द्रहवें एवं सतरहवें भव में सौधर्म कल्प, ब्रह्मलोक, द्वितीय कल्प, सनतकुमार, महेन्द्रकल्प, ब्रह्मकल्प और महाशुक्र के देव के रूप में उत्पन्न हुआ तथा तीसरे, पांचवें, छठे, आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें एवं सोलहवें भव में मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ। अठारहवें भव में भगवान महावीर के जीव ने त्रिपृष्ट वासुदेव के रुप में जन्म ग्रहण किया। इस भव में उस जीव ने आज्ञाभंग के अपराध से रुष्ट हो शय्यापालक के कानों में शीशा गर्म करवाकर डलवा दिया। इस घोर कृत्य से त्रिपृष्ट के भव में उन्होंने निकाचित कर्म का बन्ध किया और मरकर सातवीं नरक में उत्पन्न हुए। तदनन्तर अनेक भव कर प्रियमित्र चक्रवर्ती के बाईसवें भव में संयम स्वीकार किया। तेईसवें भव में महाशुक्र कल्प में देव बनकर और चौबीसवें भव में नन्दन राजा के भव में दीक्षा ग्रहण कर कठोर तप संयम का पालन कर तीर्थंकर गोत्र का बंध किया। पच्चीसवें भव में प्राणत नामक दशवें स्वर्ग के देव नामकर्म का आयुष्य पूर्ण कर भगवान का जीव छब्बीसवें भव में देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में उत्पन्न हुआ और हरिणगमैषी देव द्वारा देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला देवी की कुक्षि में गर्भ साहरण किया गया, जो भगवान का सत्ताईसवां भव माना जाता है। महावीर के जीव ने जिस समय दशवें स्वर्ग से च्यवन किया, तब वह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानों से युक्त था।

राजनीतिक स्थिति–

भगवान पार्श्वनाथ के 250 वर्ष पश्चात् भगवान श्री महावीर चौबीसवें तीर्थंकर के रूप में 599 ईसा पूर्व भारत भूमि में जन्मे। उस समय देश की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति विकृत हो चुकी थी। धर्म के नाम पर सर्वत्र आडम्बर था। पार्श्वकालीन तप, संयम और धर्म के प्रति रुचि मंद हो चुकी थी। वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद के बन्धन में मानव समाज जकड़ा हुआ और उलझा हुआ था। उस काल में भारतवर्ष में एक ओर सामन्ती राजशाही पनप रही थी तो दूसरी ओर प्रजातन्त्रीय प्रणाली भी चल रही थी। राज्य 'गण' के नाम से विख्यात थे। उस समय भारत सोलह महाजन पदों[4] में विभक्त था। प्रत्येक गण का एक प्रतिनिधि होता था जिसका चुनाव द्वारा चयन होता था। तत्कालीन गणराज्यों में सबसे

प्रबल लिच्छवी गणराज्य था, जिसकी राजधानी वैशाली थी। महाराज चेटक इस गणराज्य के प्रधान थे। महाराज चेटक ने अपनी बहिन त्रिशला का विवाह वैशाली के स्वतन्त्र नगर कुण्डपुर के इक्ष्वाकुवंशी और काश्यप गोत्रीय राजा सिद्धार्थ के साथ किया। विभिन्न गणों एवं स्वतन्त्र राज्यों के होते हुए भी ब्राह्मण प्रेरित राज्यवर्गों के उत्पीड़न से जनसाधारण में क्षोभ और विषाद का प्राबल्य था। धर्म साधना का हेतु निर्वाण या मुक्ति के बदले मात्र अभ्युदय या स्वर्ग रह गया था। ऐसे विषम समय में सत्यमार्ग का निरूपण करने और आत्म-जागृति का संदेश देने के लिए भगवान महावीर का जन्म हुआ।

जन्म एवं बाल्यकाल-

वैशाली के नगर कुण्डपुर के दक्षिणी-भाग ब्राह्मणकुण्डपुर में कुडाल गोत्रीय ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा की कुक्षि में गर्भ रूप में भगवान महावीर के जीव ने प्रवेश किया। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव सदा प्रभावशाली क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं। परन्तु महावीर स्वामी के जीव का ब्राह्मण कुल देखकर शक्रेन्द्र ने हरिणगमैषी देव द्वारा 82 रात्रियाँ देवानन्दा के गर्भ में बिताने के बाद 83 वीं रात्रि में कुण्डपुर के ज्ञातृवंशीय राजा सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला के गर्भ में इस जीव का साहरण करवाया।

गर्भकाल पूर्ण कर नौ मास और साढ़े सात दिन बीतने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मध्यरात्रि के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में त्रिशला क्षत्रियाणी ने मंगलमय वातावरण में सुखपूर्वक पुत्ररत्न को जन्म दिया। प्रभु के जन्म काल में सभी ग्रह उच्च स्थान पर थे। समस्त दिशाएँ प्रकाशपूर्ण थीं। धन-धान्य की समृद्धि से जन-जीवन प्रमोदपूर्ण था। समस्त लोक अलौकिक उद्योत और शान्ति से व्याप्त हो गया। देवों, देवियों और देवेन्द्रों द्वारा प्रभु का जन्माभिषेक मनाया गया। शक्रेन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने राजा सिद्धार्थ के राज्यकोष को विपुल निधियों से परिपूर्ण किया। दस दिनों तक बड़े हर्षोल्लास के साथ भगवान का जन्मोत्सव मनाया गया।

प्रभु महावीर के इस कुल में प्रवेश करते ही राजा सिद्धार्थ के राज्य-कोष, बल (सेना), वाहन, धन-धान्य आदि समस्त राजकीय वैभव में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, फलतः सिद्धार्थ-त्रिशला युगल ने नवजात का नाम 'वर्द्धमान' रखा। ज्ञातृकुल में उत्पन्न होने से 'ज्ञातपुत्र' और परीषहों में निर्भय-अचल रहने से देवों द्वारा 'महावीर' नाम रखा गया।[5]

तीन ज्ञान के धनी शिशु महावीर द्वितीया के चांद की तरह उत्तरोत्तर अभिवृद्ध होते हुए स्वतः लौकिक ज्ञान-विज्ञान में निष्णात हो क्रमशः बालवय से किशोरवय में और किशोरवय से युवावस्था में प्रविष्ट हुए। श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन शास्त्रों में वर्धमान के अतुलबल से सम्बन्धित विवरण मिलते हैं। उनमें यह वर्णन मिलता है कि शक्ति और

शारीरिक सामर्थ्य में वर्धमान अपने समवयस्कों से सहजरूप में अत्यधिक बलवान थे। तीर्थंकरों में सर्वोत्तम संहनन और संस्थान होता है। वही सर्वोत्तम संहनन वज्रऋषभनाराच और समचतुरस्र संस्थान वर्धमान में भी थे। एक दिन अपने पिता के उद्यान में साथियों के साथ वर्धमान बाल क्रीडाएँ कर रहे थे, तभी एक क्रोधी पागल हाथी वर्धमान की ओर आक्रमणार्थ बढ़ने लगा। हाथी के भय से सभी बालक भाग खड़े हुए, परन्तु वर्धमान निर्भयतापूर्वक समत्व भाव से हाथी की ओर बढ़े और अपने शक्तिशाली हाथों से उसकी सूंड पकड़कर तत्काल पीठ पर चढ़ बैठे। इस घटना से महावीर स्वामी के असीम साहस और बल की जानकारी होती है।

एक अन्य आख्यान से भी उनके साहस और बल का परिचय मिलता है कि एक बार वर्धमान अपने समवयस्क साथियों के साथ पेड़ पर संकुली नामक खेल खेल रहे थे। तभी एक देव भयंकर सर्प का रूप धारण कर वृक्ष के तने पर लिपट गया। सर्प की भयंकर फुफकार से भयभीत होकर सभी बालक इधर-उधर भागने लगे। परन्तु वर्धमान ने निश्शंक भाव से सर्प को रज्जु की तरह पकड़कर एक ओर फैंक दिया।[6] सर्प के हटा दिए जाने पर सभी बालक पुनः आ गए और तिंदुसक खेल खेलने लगे। तिंदुसक खेल के दौरान देव ने बालक का रूप धारण कर उन्हें कंधे पर बिठा लिया। परन्तु वर्धमान ने निर्भयता से देव की पीठ पर ऐसा मुष्टि प्रहार किया कि उसका गेंद के समान फूला हुआ शरीर दबकर वामनाकार हो गया और उसका मिथ्याभिमान चूर-चूर हो गया। देव ने बालक वर्द्धमान के पराक्रम की प्रशंसा की।

बालक वर्द्धमान जब आठ वर्ष के हुए तब माता-पिता ने शुभ मुहूर्त्त देखकर उनको अध्ययन के लिए कलाचार्य के पास भेजा। वहीं गुरु, माता-पिता और सामान्यजन समुदाय को उनकी असाधारण योग्यता का परिचय मिला।

गृहस्थ जीवन

महावीर स्वामी के चाचा का नाम सुपार्श्व, ज्येष्ठ भ्राता का नाम नन्दिवर्धन और बहिन का नाम सुदर्शना था। गर्भकाल में ही माता के स्नेहाधिक्य को देखकर महावीर ने अभिग्रह कर रखा था कि जब तक माता-पिता जीवित रहेंगे, वे दीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे। पिता को प्रसन्न रखने के इस अभिग्रह के कारण और भोगावलि के उदय से उन्हें विवाह बन्धन में बंधना पड़ा। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार वसंतपुर के महासामन्त समरवीर की सर्वगुण सम्पन्ना पुत्री यशोदा के साथ शुभ मुहूर्त्त में उनका पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। महावीर स्वामी के प्रियदर्शना नाम की पुत्री उत्पन्न हुई और उसका विवाह जमाली से हुआ। दिगम्बर परम्परा में महावीर का विवाह स्वीकार नहीं किया जाता।

राजसी भोग साधनों की अनुकूलता मिलने पर भी प्रबुद्ध महावीर इन साधनों से

कमलपत्र की भांति निर्लेप थे। कृत कर्म का उदय और माता-पिता का स्नेहाधिक्य उनके संसार में रहने के प्रमुख कारण थे। 28 वर्ष की आयु में माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के बाद महावीर ने स्वजनों के सम्मुख प्रव्रज्या लेने की भावना व्यक्त की। सभी ने कम से कम दो वर्ष और संसार में रुकने का अनुरोध किया। इस अवधि में महावीर स्वामी विरक्त भाव से घर में रहे। ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। प्राणातिपात, असत्य, कुशील और अदत्त का भी परित्याग कर दिया। प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हुए वर्ष भर में तीन अरब अठ्यासी करोड़ अस्सी लाख स्वर्णमुद्राओं का दान किया।

दीक्षा

हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के शुभ समय में निर्जल बेले की तपस्या करते हुए प्रभु महावीर ने देव-मनुष्यों की विशाल परिषद् के समक्ष स्वयं ही सामायिक चारित्र स्वीकार किया और समस्त सावद्यकर्म का तीन करण और तीन योग से त्याग किया। चारित्र ग्रहण करते ही उन्हें मन:पर्यव ज्ञान हो गया। अब वे अढाईद्वीप और दो समुद्र तक के सभी समनस्क जीवों के मनोगत भावों को भी जानने में समर्थ हो गए।

तपस्या, साधनाकाल एवं केवलज्ञान

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् प्रभु महावीर ने देह के प्रति ममत्व का त्याग कर दिया। वे देव, मनुष्य अथवा तिर्यंच किसी भी जीव द्वारा दिए गए उपसर्ग को समभावपूर्वक सहन करने लगे। क्रोध कषाय पर नियंत्रण कर वे सदैव दत्तचित्त रहे तथा सम्यक्त्व द्वारा अपने चित्त को शान्त बनाए रखा। उन्होंने सावधानीपूर्वक छोटे से छोटे जीवों को भी हानि नहीं पहुँचाई। वे मानापमान का विचार न रखते हुए संयम और आराधना के निमित्त अदीन भाव से आहार के शुद्ध स्थानों से निर्दोष, प्रासुक आहार ग्रहण करते थे। वे नयनों में गिरे रजकणों के निवारणार्थ आँखों को न मसलते थे और न ही दंशमशकादिकों के काटने से शरीर को खुजलाते थे। अपने साधना काल में वे शून्य गृह, सभागृह, धर्मशालाओं, झोंपड़ियों, श्मशान आदि में दूसरों की अनुकूलता पूर्वक निवास करते थे। तात्पर्य यह है कि उनके रहने का स्थान अनिश्चित था। तेरह वर्ष तक वे कभी निद्रा के अधीन नहीं हुए। यदि कभी निद्रा आने लगती तो सजगता से आत्मा को तप और संयम में तल्लीन कर लेते थे।

इस साधना काल में प्रभु महावीर ने अनेक घोर उपसर्गों का सामना किया। कभी सर्पादि विषैले जन्तु और कभी काक-गिद्ध आदि तीक्ष्ण चंचु वाले पक्षी प्रहार करते थे, तो कभी दुष्टजन और ग्राम-रक्षक तीक्ष्ण शस्त्रों का आघात करते थे। कभी शूलपाणि यक्ष ने अनेक प्रकार की यातनाएँ दीं, तो कभी अनार्य क्षेत्र में अनार्यजन ने उनके शरीर को नोंचा, मांस-पिण्ड काटा, शरीर पर धूल फैंकी, आसन से खींचकर उन्हें नीचे गिराया। इस तरह देव-

मनुष्य-तिर्यंच प्रदत्त अनुकूल-प्रतिकूल सभी परीषह-उपसर्गों को उन्होंने निर्भयता एवं सम्यक् भाव से क्रोध रहित होकर धर्म-ध्यान में लीन रहकर समत्व भाव से सहन किया।

विभिन्न परीषह और उपसर्गो की यह आत्मसाधना बारह वर्ष तक निरन्तर ध्यान और तपपूर्वक चलती रही। तेरहवें वर्ष के मध्य ग्रीष्म ऋतु में वैशाख शुक्ला दशमी के दिन जृंभिका ग्राम के बाहर ऋजुबालुका नदी तट पर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में गोदुहिका आसन में ध्यानावस्थित प्रभु महावीर को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। सुख-दुःख के बन्धनों से मुक्त अब वे सम्पूर्ण लोक के समस्त जीवों की सभी पर्यायों के ज्ञाता बन गए। केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद महावीर अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी आदि संज्ञाओं से अभिहित हुए। इस समय भगवान् की अवस्था बयालीस वर्ष थी।

केवलज्ञानी महावीर ने अपने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास करते हुए बहुसंख्यक लोगों को अपना अनुयायी बनाया।

केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भगवान महावीर ने ऋजुबालुका नदी के तट पर देव निर्मित समवसरण में प्रथम धर्म देशना दी। मनुष्यों की अनुपस्थिति से इस देशना में किसी ने सर्वविरति व्रत ग्रहण नहीं किया। तीर्थंकरों की देशना व्यर्थ नहीं जाती, अतः इस दृष्टि से यह अभूतपूर्व घटना आश्चर्य मानी जाती है। मज्झिम पावा के महोषण उद्यान में द्वितीय समवसरण में प्रभु महावीर ने धर्म और दर्शन सम्बन्धी विषयों पर गम्भीर तर्को द्वारा ग्यारह विद्वान् ब्राह्मणों[7] को जैन मतावलम्बी बनाकर निर्ग्रंथ प्रव्रज्या दी। ये ही ग्यारह विद्वान् महावीर स्वामी का प्रथम शिष्य समूह था, जो जैन परम्परा में ग्यारह गणधर के नाम से प्रतिष्ठित है।

महावीर स्वामी के अलौकिक व्यक्तित्व और संगठन चातुर्य ने अनेक लोगों को अनुयायी बनाया। संसार से विरक्त स्त्री-पुरुषों ने प्रवज्या ग्रहण की और गृहस्थ स्त्री-पुरुषों ने उनके उपदेशों के अनुरूप जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। शिष्य और अनुयायी वर्ग को संगठित करने हेतु महावीर ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका स्वरूप चतुर्विध संघ की स्थापना की। इस संघ में 14,000 साधु और 36,000 साध्वियाँ थीं एवं 1,59,000 गृहस्थ श्रावक तथा 3,18,000 श्राविकाएँ थीं। महावीर स्वामी के प्रथम एवं प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम और प्रथम शिष्या चन्दनबाला (महाजनपद की राजकुमारी) थीं। श्रावकों में शंख शतक प्रधान था। सुलसा एवं रेवती प्रधान श्राविकाएँ थीं।

भगवान महावीर ने वर्षाऋतु के चार मास (चातुर्मास) भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक या एक से अधिक बार व्यतीत किए। एक चातुर्मास अस्थिग्राम में, तीन चम्पा और वृष्टि चम्पा में, बारह वैशाली और वाणिज्य ग्राम में, चौदह राजगृह एवं नालन्दा में, छह मिथिला में, दो भद्रिका में, एक आलभिका में और एक श्रावस्ती में तथा अन्तिम चातुर्मास राजा हस्तिपाल

की पावापुरी में पूर्ण किए। ऐसे कुल बयालीस वर्षाकाल महावीर ने व्यतीत किए।

केवली चर्या के तीसवें वर्षावास के चौथे महीने में कार्तिक अमावस्या की पिछली रात्रि से प्रभु ने अपने मुखारविन्द से अनवरत उपदेशामृत की वृष्टि की। इस देशना में पुण्यफल और पापफल के पचपन-पचपन अध्यायों का और उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्यायों का कथन किया गया। 37 वाँ अध्ययन फरमाते हुए बीच में ही प्रभु पर्यंकासन में स्थिर होकर शुक्लध्यान की अवस्था में पहुँच गए। शुक्लध्यान के चतुर्थ चरण में पहुँचकर शैलेशी दशा में चार अघातिकर्मों का क्षय किया और सिद्ध-बुद्ध-मुक्त अवस्था को प्राप्त हो गए। निर्वाणकाल में प्रभु छठ्ठ भक्त (बेले) की तपस्या से सोलह प्रहर तक देशना कर रहे थे।

भगवान महावीर स्वामी मानव समाज के प्रमुख धर्माचार्य थे, जिन्होंने मानव समुदाय के कल्याणार्थ जो व्रत-नियम निर्धारित किए, उनका पहले स्वयं ने समतापूर्वक पालन किया, तत्पश्चात् उनका प्रचार किया। प्रभु महावीर ने मन, वचन और काया से अहिंसा के पालन पर जोर दिया। उनके कर्म सिद्धान्त ने जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर होने वाले असद् व्यवहार को निर्मूल कर दिया। अनेकान्तवाद सिद्धान्त के माध्यम से उदार दृष्टिकोण को अपनाते हुए प्रभु महावीर ने धार्मिक सौहार्द का वातावरण स्थापित किया। चातुर्याम धर्म का संस्कार कर उन्होंने ब्रह्मचर्य को स्वतंत्र महाव्रत घोषित किया तथा अपरिग्रह के सिद्धान्त से वस्तुओं-विषयों के प्रति ममत्व और मूर्च्छा भाव के त्याग पर बल दिया। प्रभु महावीर ने निर्ग्रंथ धर्म को दर्शन जगत् में अपनी तर्कपूर्ण मान्यताओं से पुष्ट किया।

संदर्भ-

1. नर का नारायण होना उत्तार है। अतः जैन धर्म अवतारवादी नहीं उत्तारवादी है।- जैन धर्म का मौलिक इतिहास- प्रथम भाग तीर्थंकर खण्ड, पृष्ठ संख्या 536
2. आवश्यक निर्युक्ति, 176-178, ज्ञाताधर्मकथा, 8
3. तत्त्वार्थ सूत्र, 6.23
4. सोलह महाजन पद हैं- कासि, कोशल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेतिय, वंस, कुरु, पंचाल, मच्छ, हुस्सेन, अस्सक, अवन्ति, गन्धार और कम्बोज। द्रष्टव्य- जैनधर्म का इतिहास, भाग-1, पृष्ठ-xxxii, डॉ. कैलाशचन्द जैन
5. कल्पसूत्र, सूत्र 91,103,104,106, 107 एवं आचारांग सूत्र, श्रुत-2, अध्ययन 15
6. स्मित्वा रज्जुमिवोत्क्षिप्य, तं चिक्षेप क्षितौ विभुः।- त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, पर्व 10.02.107 वां श्लोक
7. ग्यारह विद्वान् ब्राह्मण हैं- 1. इन्द्रभूति गौतम, 2. अग्निभूति, 3. वायुभूति, 4. आर्यव्यक्त, 5. सुधर्मा, 6. मंडित, 7. मौर्यपुत्र, 8. अकम्पित, 9. अचलभ्राता, 10. मेतार्य, 11. प्रभास।

-ललवाणी भवन, कोलरी, नवचौकिया, जोधपुर-342001 (राज.)

शोधालेख

व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष के सन्दर्भ में वेदनीय कर्म

डॉ. दिलीप धींग

विश्व के दर्शनों में जैन-दर्शन एक सर्वथा मौलिक और स्वतंत्र दर्शन है। अहिंसा और अनेकान्त की तरह कर्म-सिद्धान्त भी जैन दर्शन का एक अनूठा, मौलिक और वैज्ञानिक सिद्धान्त है। जिस भाव-बोध के साथ 'कर्म' शब्द को सामान्यतः समझा जाता है, कर्म-सिद्धान्त के अन्तर्गत वह विशिष्ट अर्थों में प्रयुक्त होता है।

जैन दर्शन में मूलतः दो घटक माने गये हैं- जीव और अजीव। मूल्य मीमांसा के अन्तर्गत इन्हीं दो घटकों का विस्तार नौ तत्त्वों (जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष) के रूप में किया गया है।[1] पदार्थ मीमांसा में जीव-अजीव का वर्गीकरण छह द्रव्यों (धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल, आकाश और काल) के रूप में किया गया है। जीव और अजीव (कर्म पुद्गल) का अनादिकालीन सम्बन्ध है। यह प्रवाह की दृष्टि से अनादिकालीन है। कर्म के नवीन बन्ध की दृष्टि से आत्मा और कर्म के सम्बन्ध को सादि माना जाता है। जीव का अजीव से सर्वथा मुक्त हो जाना ही मोक्ष है।[2]

यूं तो कर्म अनन्त प्रकार के माने गये हैं। लेकिन उन्हें मुख्यतः आठ भागों में विभाजित किया जाता है- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय।[3] ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घाती कर्म कहलाते हैं। यानी ये कर्म आत्मा के मूल गुणों ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यशक्ति का घात करते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र अघाती कर्म माने जाते हैं। ये कर्म आत्मा के किसी मूल गुण का नाश नहीं करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति सुरूप या कुरूप, सुडौल या बेडौल हो सकता है, लेकिन इन नाम कर्मजन्य अवस्थाओं का व्यक्ति की ज्ञान-शक्ति के साथ कोई सहसम्बन्ध नहीं है।

इन अघाती कर्मों के अन्तर्गत हमारा विमर्शणीय विषय वेदनीय कर्म है। वेदनीय कर्म का हमारे जीवन और समाज पर गहरा प्रभाव रहता है। हमारे वैयक्तिक और अवैयक्तिक जीवन के स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य, हर्ष-विषाद और उत्कर्ष-अपकर्ष में वेदनीय कर्म का प्रभाव अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। यह प्रभाव शरीर, परिवार, समाज, देश, अर्थ, पर्यावरण, परिस्थिति आदि से सम्बन्धित हो सकता है।

वेदनीय कर्म के बंध और उदय में ऐसे अनेक कारण हैं, जो व्यक्ति से लेकर विश्व तक के दुःखों को कम करने और सुखों को बढ़ाने में मददगार हो सकते हैं। मोटे तौर पर वेदनीय कर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के निजी साता-असाता और सुख-दुःख से लिया जाता है। लेकिन वैयक्तिक घटनाओं का परिवार, समाज और वातावरण पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार सामूहिक रूप से किये जाने वाले परमार्थ और उपकार के कार्यों का भी व्यक्तिगत जीवन पर प्रभाव पड़ता है।

व्यष्टि और समष्टि का यह अन्तःसम्बन्ध वेदनीय कर्म के अनुशीलन का महत्त्व बढ़ा देता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज के उत्कर्ष के लिए वेदनीय कर्म की मीमांसा उपयोगी और मार्गदर्शी हो जाती है।

जीव जो सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। वेदनीय कर्म को शहद से लिपटी हुई तलवार की संज्ञा दी जाती है। मधु-लिपटी तलवार चाटने से मधु की मधुरता और तलवार की तीक्ष्णता, दोनों प्रकार के अनुभव होते हैं। यह अनुकूलता और प्रतिकूलता ही वेदनीय के दो प्रकारों का आधार बनती है। वेदनीय कर्म के दो भेद हैं- साता वेदनीय और असाता वेदनीय। साता वेदनीय के उदय से जीव को शारीरिक, मानसिक और इन्द्रिय सुख मिलते हैं तथा जीवन-यापन के लिए अनुकूल भोग सामग्री उपलब्ध होती है। इसके विपरीत असाता वेदनीय कर्म के उदय से जीव को तरह-तरह के कष्ट, संकट, दुःख और पीड़ाएँ झेलनी पड़ती हैं। इस दृष्टि से अनुकूल (साता) वेदनीय के निरन्तर उदय की आकांक्षा सबको रहती है। अध्यात्म जगत् में बार-बार आत्मसुख की चर्चा होती है। क्योंकि आत्मसुख स्थायी व सच्चा होता है। लेकिन आत्मसुख से पूर्व हर जीव शारीरिक और परिस्थितिजन्य अनुकूलताओं का आकांक्षी होता है। आत्मसुख की प्राप्ति के लिए भी बाह्य अनुकूलताओं की अपेक्षा रहती है। तत्त्व की भाषा में उसे पुण्य कहा जाता है। पुण्य की महत्ता पर मेरे द्वारा संयोजित मुक्तक है-

संजीवनी पीकर भी पापी है अधमरा।
पुण्यशाली मरुस्थल में भी रहता हरा-भरा।।
कैसे नकार दें महत्त्व पुण्य-तत्त्व का?
पुण्य की छाँव में होते हैं संवर-निर्जरा।[4]

पुण्य सांसारिक जीवन की साधना और आध्यात्मिक जीवन की साधना, दोनों के लिए आवश्यक है। सभी जीव और मनुष्य सुख चाहते हैं, साता चाहते हैं। असाता, रोग, पीड़ा और अभाव कोई नहीं चाहता है। इस प्रकार की आकांक्षा और आवश्यकता के कारण वेदनीय कर्म का महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाता है।

सुख, साता और अनुकूलता की प्राप्ति कैसे होती है? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर कहते हैं- प्राणियों पर अनुकम्पा करने से, जीवों पर अनुकम्पा करने से, सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, बहुत से प्राणियों को दुःख नहीं देने से, शोक नहीं कराने से, न झुराने से, न सताने से, न पीटने से, न परिताप देने से जीव साता वेदनीय कर्म का आस्रव करते हैं।[5] यहाँ अहिंसा, करुणा, ज़ीवदया और प्राणी-रक्षा को सुख और अनुकूलताओं का कारण बताया गया है। पर्यावरण की रक्षा में भी अहिंसा की भूमिका को सबने स्वीकार किया है। अच्छा पर्यावरण सबको नैसर्गिक अनुकूलताएँ प्रदान करता है। तत्त्वार्थसूत्र में दया, अनुकम्पा के साथ ही व्रत-संयम का पालन, क्षमा, शुचिता आदि को साता वेदनीय कर्मास्रव के लिए आवश्यक बताया गया है।[6] अहिंसा को शक्तिशाली बनाने के लिए तथा अहिंसा की पूर्ण आराधना के लिए क्षमा, संयम, मैत्री की साधना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

इसके विपरीत जो जीव दूसरों को दुःख देता है, शोक देता है, रुलाता है, झुराता है, पीटता है, परिताप देता है, बहुत से प्राणियों और जीवों को दुःख और परिताप देता है, वह असाता वेदनीय कर्म का आस्रव करता है।[7] स्पष्ट है कि प्राणियों को सताना, जीवों का वध करना, हिंसा करना आदि असाता और दुःख के हेतु हैं। दूसरों को दुःख देकर, मारकर, सताकर सुख की आशा करना व्यर्थ है। हिंसा से पर्यावरण और सामाजिक वातावरण भी दूषित होता है। जिससे तरह-तरह की प्रतिकूलताएँ व बीमारियाँ पैदा होती हैं। आचार्य उमास्वाति भी यही कहते हैं कि दूसरों को दुःख, शोक, परिताप, क्रन्दन, परिवेदना आदि देने से असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।[8] आचार्य देवेन्द्रसूरि (13 वीं सदी) ने कर्मविपाक ग्रंथ में साता वेदनीय के आठ कारण बताये हैं-

गुरुभत्तिखंतिकरुणा वयजोगकसायविजय दाणजुओ।
दढधम्माई अज्जई सायमसायं ववजयओ।।[9]

गुरु-भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, योग, कषाय-विजय, दानशीलता और धर्म में स्थिरता से साता वेदनीय का तथा इसके विपरीत प्रवृत्ति करने से असाता वेदनीय का बंध होता है। कर्म विज्ञान (भाग-4)[10] में इन आठ कारणों के अलावा अकाम-निर्जरा और विनय, इन दो कारणों को और जोड़ा गया है। यह सुस्पष्ट है कि सुख देने से सुख मिलता है और समाधि पहुँचाने वाला समाधि प्राप्त करता है।-'**समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भइ**।'[11]

आज जब हम चारों ओर नज़र दौड़ाते हैं तो सुखी व्यक्ति चार तो दुःखी हजार दिखाई

देते हैं। यानी साता वेदनीय का अभाव और असाता वेदनीय की अधिकता दिखाई पड़ती है। वेदनीय कर्म की मीमांसा इन रोगों, कष्टों और पीड़ाओं के कारणों की तलाश करती है। जीवन में अनुकूलताएँ कैसे बढ़ें और प्रतिकूलताएँ कैसे घटें, वेदनीय कर्म इसका मार्गदर्शन दे रहा है। कोई भी नहीं चाहता कि दुःख आए, किन्तु दुःख आते हैं और दुःख झेलने पड़ते हैं। जब दुःख आते हैं तो व्यक्ति परेशान होता है, छटपटाता है। एक दुःखी व्यक्ति के निमित्त से उसके परिजन और अन्य सम्बन्धित व्यक्ति भी परेशान होते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि शारीरिक-मानसिक सुख, आरोग्य और जीवन यापन के साधनों की अनुकूलता साता वेदनीय के उदय का फल है। हर व्यक्ति असाता से मुक्त होकर साता में आना चाहता है। ऐसे समय में वेदनीय कर्म का बोध हमें किस सीमा तक राहत दे सकता है, यह विमर्शणीय है। वेदनीय कर्म के दो भेदों में से हर जीव अपने लिए साता चाहता है। साता और अनुकूलता के बीज-वपन के लिए उल्लिखित दस कारणों पर चिन्तन हमें समाधान प्रदान करता है। साता वेदनीय बंध के कारण निम्न हैं-

1. **गुरु-भक्ति-** गुरुभक्ति के अन्तर्गत धर्मगुरु और शिक्षागुरु के अलावा माता-पिता और सभी उपकारियों का समावेश हो जाता है। गुरुभक्ति से हमें कृतज्ञता की शिक्षा मिलती है। कृतज्ञ व्यक्ति असाता का बंध नहीं करता है। कृतज्ञता का भली प्रकार से निर्वहन करने से साता वेदनीय कर्म का बंध होता है। जब व्यक्ति के असाता उपजे तो उसे चिन्तन करना चाहिये कि मेरे उपकार का कुफल मुझे मिल रहा है। हे प्रभो! मैं कभी किसी के प्रति कृतघ्न नहीं बनूँ।
2. **क्षमा-** क्षमा को धर्म का पहला चरण बताया गया है। अक्रोध, अप्रतिशोध, सहनशीलता आदि क्षमा की साधना के उपाय हैं। निर्वैर, प्रेम, शान्ति आदि क्षमा के सुफल हैं। इन सबके अलावा क्षमा असाता की निवारक और साता उपजाने वाली औषधि है। क्षमा भाव मन में आ जाने मात्र से व्यक्ति को मानसिक साता तुरन्त प्राप्त हो जाती है। यह क्षमा का तात्कालिक प्रभाव है। इस प्रकार के भाव के साथ ही साता वेदनीय का बंध होता है, जो जीव को उदय में आने पर सुख देने वाला बनता है।
3. **करुणा-** करुणाशील और दयावान व्यक्ति कभी किसी को कष्ट नहीं देता है। प्रत्युत वह कष्ट में पड़े प्राणी के कष्टों के निवारण के लिए प्रयत्न करता है। कष्ट का निवारण हो जाने से सुख का अनुभव करता है। करुणा और अनुकम्पा से जीव साता वेदनीय का बंध करता है। इसके विपरीत जीवहिंसा से असाता वेदनीय का बंध होता है। प्राचीनतम आगम-ग्रन्थ, आचारांग-सूत्र में वर्धमान महावीर कहते हैं- सब दुःख हिंसा में से उत्पन्न होते हैं। सूत्रकृतांग में उन्होंने कहा- हिंसा में लगे हुए अज्ञानी जीव

अन्धकार से अन्धकार की ओर बढ़ रहे हैं। करुणा की भावना शाकाहारी जीवन शैली को बल देती है और शाकाहारिता पर्यावरण-रक्षा के लिए आवश्यक है।

4. **व्रत**- यह प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि असंयम से रोग बढ़ते हैं। असंयम न तो व्यक्ति के लिए हितकारी है और न ही समाज और प्रकृति के लिए। व्रत-ग्रहण और व्रतों का अनुपालन असंयम के निवारण का उपाय है। जो व्यक्ति प्रशस्त योगों के साथ अणुव्रतों और महाव्रतों का अनुपालन करता है, वह साता वेदनीय का बंध करता है। कई बार असाता होने पर भी व्रत-ग्रहण और व्रत-ग्रहण की भावना व्यक्ति को असाता से मुक्त कर देती है। उत्तराध्ययन सूत्र में अनाथी मुनि का वर्णन है। मुनि जीवन अंगीकार करने से पूर्व अनाथी असह्य वेदना सह रहे थे। वेदना के क्षणों में उन्होंने संयम का संकल्प किया और उनकी असाता उपशान्त हो गई।[12]

5. **योग**- जैन ग्रन्थों में मन, वचन और काया को योग की संज्ञा दी गई है। इन तीनों योगों की शुभ प्रवृत्तियाँ साता वेदनीय के बंध में सहायक बनती है। पुण्य के नौ प्रकारों में भी इन योगों का समावेश है।[13] बंध के चार प्रकारों में से प्रकृति और प्रदेश बंध का सम्बन्ध योग से है। असाता होने पर मन को मजबूत बनाना, अनुकूल वचनों का प्रयोग करना और काया से सेवा में संलग्न होने से प्रत्यक्ष रूप से जीव साता पाता है और साता वेदनीय का अर्जन भी करता है।

6. **कषाय-विजय**- चार कषाय (क्रोध, लोभ, मान और माया) मानव में मानसिक क्लेश उत्पन्न करते हैं। मानसिक क्लेश शारीरिक व्याधियों के कारण भी बनते हैं। भगवती आराधना के अनुसार उपशम, दया और निग्रह रूपी शस्त्रों से कषाय रूपी चोरों से रक्षा की जा सकती है। कषाय स्थिति और अनुभाग बंध का कारण बनते हैं। अल्प कषायी व्यक्ति स्वयं के जीवन में सुख-शान्ति की सृष्टि करता है और औरों के जीवन में भी। कषायों को क्षीण करने से शारीरिक-मानसिक सुखों के साथ आत्मिक सुख की अनुभूति भी होती है।

7. **दानशीलता**- जैन धर्म में दानशीलता पर अनेक तरह से विचार-विमर्श किया गया है। अपरिग्रह की साधना हो या त्याग-धर्म की आराधना या अतिथि संविभाग व्रत का अनुपालन, सर्वत्र विविध रूपों में दान की महिमा गाई गई है। दान, दाता के दुःखों का हरण कर लेता है और ग्रहणकर्ता को राहत देता है। शास्त्रों में चार प्रकार के दान बताये गये हैं- अन्न, ज्ञान, औषध और अभयदान। अन्न-जल से क्षुधा वेदनीय का नाश होता है। ज्ञान से अज्ञान का दुःख समाप्त होता है। औषध से बीमारियाँ मिटाई जाती हैं। सप्त

भयों में से किसी भी भय से भयभीत प्राणी को मुक्त करना अभयदान है। दानशीलता से सुख, सौभाग्य, आरोग्य और अनुकूलताओं का सर्जन होता है।[14]

8. **धर्म में स्थिरता–** धर्म एक अनेकार्थी शब्द है। दशवैकालिक सूत्र में अहिंसा, संयम और तप को श्रेष्ठ धर्म बताया गया है। रत्नत्रय (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) धर्म है। दान, शील, तप और भाव के माध्यम से धर्माराधना की जाती है। इनकी साधना के लिए एक तरफ साधना-उपासना करनी होती है, दूसरी ओर न्याय-नीतिमय जीवन जीना होता है। शास्त्रकार कहते हैं कि धर्म के प्रति आस्था और धर्म में स्थिरता से जीव साता वेदनीय का बंध करता है।

9. **अकाम निर्जरा–** अकाम निर्जरा का आशय है- कर्म का उदय आने पर अनिच्छा से कष्ट सहन करने से अकाम निर्जरा होती है। तत्त्वार्थ सूत्र में साता वेदनीय के लिए आठ कारण बताये गये हैं, उनमें अकाम निर्जरा तथा बाल तप भी समाविष्ट है। कष्टों का आना असाता का उदय है। कष्टों को समभावपूर्वक सहन करना कष्टों को कम करना है और साथ ही नये सिरे से साता वेदनीय का बंध करना है।

10. **विनय–** देव-गुरु-धर्म, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, माता-पिता व उपकारियों का विनय करने से, उनकी सेवा करने से अन्य अनेक लाभों के अलावा साता वेदनीय का बंध होता है। विनयपूर्वक सेवा करने वाला नीरोग और बलवान बनता है। विनय से आशीर्वाद मिलता है, दुःख हल्का होता है तथा रंज को भुलाने में मदद मिलती है। दशवैकालिक सूत्र में विनय को समाधि कहा गया है।

साता वेदनीय बंध के ये कारण सिर्फ व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, अपितु सामुदायिक जीवन में भी सुखों की सृष्टि करते हैं, पर्यावरण को अच्छा बनाते हैं। जैसे हिंसा से प्रतिहिंसा और दुःखों की शृंखला बन जाती है, वैसे ही अहिंसा, क्षमा, संयम आदि से सुखों की शृंखला बनती है। कर्म विषयक ग्रंथों में अलग-अलग रोगों के लिए अलग-अलग स्वतंत्र कारण भी बताये गये हैं।[15] जैसे अनछना पानी पीने से नारूबाला रोग होता है। जो व्यक्ति मोर, साँप-बिच्छू आदि जीवों को मारता है, जंगल में आग लगाता है, उसे कुष्ठ रोग होता है। जो अपने आश्रित मवेशियों और कर्मचारियों से अधिक काम लेता है, उन पर अत्याचार करता है, उसे दाहज्वर होता है। गुप्त व्यभिचारी पथरी रोग से ग्रसित हो जाता है। मछली, केकड़े आदि जलीय जन्तुओं को तड़पा-तड़पाकर मारने और खाने वाले के शरीर में रोगोत्पादक कृमि पैदा हो जाते हैं। मुनियों को ईर्ष्यावश, द्वेषवश नीरस आहार देने से जलोदर रोग होता है। ग्राम-नगर में आग लगाने से सोलह प्रकार के रोग होते हैं। रोगों के इन

कारणों में कुछ का सम्बन्धित रोग से प्रत्यक्ष सहसम्बन्ध घटित होता है। कर्म सिद्धान्त में कारण और परिणाम के बीच कहीं व्यावहारिक सहसम्बन्ध दीख पड़ता है तो कहीं नैश्चयिक सहसम्बन्ध होता है, जो मानव की बुद्धि की पकड़ में नहीं आता है। अच्छे कर्मोदय के लिए अच्छा कारण और बुरे कर्मोदय के लिए बुरा कारण होता है। इन सारे कारणों का सार यह है कि सुखप्राप्ति और दुःखमुक्ति के लिए जीवन में अहिंसा, संयम और सेवा के मार्ग पर चलना आवश्यक है।

वेदनीय कर्मबंध के सभी कारण वैयक्तिक और सामुदायिक दुःखों को घटाने तथा सुखों को बढ़ाने में व्यावहारिक मार्ग सुझाते हैं। वेदनीय कर्म हमारे व्यावहारिक जीवन को सुख, समता और प्रेम से परिपूर्ण करने के लिए पुण्य बढ़ाने और पाप घटाने का सन्देश देता है। दुःख आने पर जीव जब क्रंदन, अनुताप, शोक और विलाप करता है तो नये सिरे से पुनः असाता का बंध होता है। इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए व्यक्ति को आर्तध्यान से मुक्त रहने की साधना समभाव से करनी चाहिये। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में लिखा है कि कर्मों के विपाक आदि के विषय में मनोयोगपूर्वक चिन्तन-मनन-अनुप्रेक्षण आदि करने से रागादि की मन्दता होती है, इससे दुःख-विजय का कार्य आसान हो जाता है।[16]

व्यक्ति को विचार करना चाहिये कि मैं स्वयं ही समस्त अनुकूल और प्रतिकूल कर्मों का कर्ता और भोक्ता हूँ। मेरे सुख-दुःख के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार हूँ।[17] इस प्रकार कर्मवाद का सिद्धान्त आशावाद का संचार करता है। वह अकर्मण्य होकर बैठ जाने के लिए नहीं कहता है। वह मानव को पुरुषार्थ की प्रेरणा देते हुए कहता है कि कर्मबंधन को सम्यक् रूप से जानो, समझो और उसे तोड़ डालो।[18] यदि कर्मबंध निकाचित नहीं है तो उदीरणा, संक्रमण और अपवर्तन के माध्यम से उन्हें निर्जरित या रूपान्तरित किया जा सकता है। रोग, बीमारी आदि होने पर हमें समभाव के साथ उनको कम करने का पुरुषार्थ करना चाहिये। हमारे पुण्य और पुरुषार्थ से हम अनुकूलताएँ प्राप्त करें। अनुकूलताओं में गुणात्मक वृद्धि के लिए पुण्य से पुण्य के दीप जलाएँ। पुण्य के प्रकाश में अप्रमत्त बनकर आत्मा का प्रकाश प्रकट करने का पुरुषार्थ करें।

सन्दर्भः-

1. ठाणांग सूत्र 9 वाँ स्थान। तत्त्वार्थ सूत्र में पुण्य व पाप की गणना आश्रव तत्त्व में की गई है और तत्त्वों की संख्या सात बताई गई है।
2. पच्चीस बोल का 20 वाँ एवं 21 वाँ बोल।
3. वही, दसवाँ बोल। पन्नवणा सूत्र, पद23
4. डॉ. दिलीप धींग की काव्यकृति 'मुक्तक-मुक्ता' से। मुक्तक क्रमांक 21, पृष्ठ 6

5. व्याख्याप्रज्ञप्ति श. 7, उ. 6, सूत्र 286
6. तत्वार्थ सूत्र 6/13, तत्वार्थ सूत्र विवेचन उपाध्याय केवलमुनि पृ. 275
7. व्याख्याप्रज्ञप्ति शतक 7, उ. 6, सूत्र 287
8. तत्वार्थ सूत्र 6/11
9. कर्मविपाक ग्रंथ, गाथा-55
10. देवेन्द्रमुनि , आचार्य, कर्म-विज्ञान भाग-4, पृष्ठांक 223
11. भगवती सूत्र 7/1
12. उत्तराध्ययन सूत्र 20 वाँ 'महानिर्ग्रन्थीय' अध्ययन
13. स्थानांग सूत्र 9/676
14. धींग दिलीप (डॉ.), 'जैन आगमों का अर्थशास्त्रीय मूल्यांकन', अध्ययन चतुर्थ, परिच्छेद-2
15. देवेन्द्रमुनि, आचार्य, कर्म विज्ञान भाग-2, पृष्ठांक 365-373
16. तत्त्वार्थ राजवार्तिक 353
17. उत्तराध्ययन सूत्र 20/37
18. बुज्झिज्जति तिउट्टिटज्जा बंधणं परिजाणिया- सूत्रकृतांग 1/1/1

-उमराव सदन, 53, डोरे नगर, उदयपुर-313002 (राज.)

अनमोल सूत्र

श्री नवरतन डागा

1. जिसका वृत्तान्त सुनकर, जिसको देखकर, जिसका स्मरण करके, समस्त प्राणियों को आनन्द होता है, उसी का जीवन आदर्श होता है।
2. मनुष्य स्वयं अपने सुख का शिल्पी है।
3. जीवन में शांति, अन्त में समाधि, परलोक में सद्गति, यह हो जीवन का लक्ष्य। इसके लिए लक्ष्य पर दृष्टि, सही रीति, पूरी शक्ति, पवित्र भावना से किसी भी कार्य को पूर्ण करना चाहिए।
4. कुछ लोग सफल होते हैं, क्योंकि उनका भाग्य उन्हें सफलता प्रदान करता है, लेकिन अधिकांशतः दृढ़ संकल्पशील व्यक्ति सफल होते हैं।
5. पहले माफी मांगने वाला सबसे बहादुर होता है। पहले माफ करने वाला सबसे स्ट्राँग होता है।
6. दिमाग पानी की तरह होता है। डिस्टर्ब होने पर कुछ भी देखना मुश्किल होता है, लेकिन सेटल होने पर सब साफ दिखता है।

-पूर्व महामंत्री, अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ,जोधपुर(राज.)

English-Section

The Unique and the Universal Dimensions of Jainism

Dr Priyadarshana Jain

Introduction

'Many a times the thought has occurred to my mind that someday the civilization could come to an end not by an atom bomb or famine, but by man's loss of self-control, his unrestrained and continually multiplying wants, exploitative and abusive harnessing of resources and wasteful and often over-consumption. Such are the tensions of our growingly artificial and superficial civilization,' observed Arnold Toynbee. In this jet age of nuclear and biological weapons, threatened by terrorism and silent wars, gripped by fear and insecurity, where violence is the order of the day, crime rate is on the increase, the potential for frustration looms larger than the promise of faith, it is indeed comforting that a reflection on the unique and the universal dimensions of Jainism comes as breeze of fresh air of hope and security.

Religion and religious experiences can be understood as the quest for ultimate reality in order to experience eternal life and joy. Reality is complex and multi-dimensional and religious pluralism which celebrates unity in plurality and plurality in unity is a unique characteristic of the evolving world of today. Reality is transcendental as well as immanent and needs to be thoroughly examined and rightfully experienced for mankind to build a peaceful, harmonious and sustainable society. Respect for one's faith and the other springs from an insight of reality. Spirituality, religiosity and morality coupled with scientific temper can facilitate man to co-exist with his fellow men in this age of conflict and enable him to resolve conflicts occurring between man and man, man and animal besides man and nature.

The word for religion in the *Śramanic* tradition was '*dharma*'

which means the nature of all substances or the underlying reality of all things. Jainism has been the greatest propounder of the *dharma* of non-violence. What we understand as Jainism today was known as *Arhat Dharma*, *Ahimsa Dharma*, *Nirgrantha Dharma*, etc in the past. Jainism belongs to the *Śramanic* current of thought and is a pre-Vedic tradition which has nurtured the Indian millennia for centuries and has great relevance for the modern world. It is one of the oldest living religions of the world, whose antiquity is traced to pre-historic times. When one hears about Jainism, the first words that ring in one's mind are *Ahimsa* i.e., non-violence, vegetarianism and compassion. Jainism is a unique spiritual system that has always demanded that the practitioner question 'blind religious faith'. In other words, ancient Jain philosophers did not require a 'leap of faith,' but on the contrary, applied logic and rationality to satisfy their quest for spirituality. The classical approach of Jainism to spirituality is what the world could use to satisfy the spiritual needs of the 21st century. The Jain system of personal commitment to peace and ecological stewardship, and its emphasis on rationality holds out a promise for the construction of a more sustainable way of life rooted in justice, hope, and equity[1].

Uniqueness of Jainism

1. Personality and not person is important:

Jainism is a philosophy and religion not founded by anyone but time and again revealed by the highly evolved, perfected, omniscient, enlightened *Tīrthaṅkaras* or the spiritual teachers also called *Arihantas* or *Jinas*. They are the embodiments of spirituality and godliness who preached the pathway of liberation for man to attain self-realization through god-realization. Besides the 24 *Tīrthaṅkara Arihantas,* the Jains adore the infinite *Arihantas* (embodied, perfected, omniscients) and *Siddhas* (disembodied, pure souls is *Nirvāṇa*)[2]. Lord Ṛṣabha was the first *Tīrthaṅkara Arihanta Jina* and Lord Mahavira was the last of the 24 *Tīrthaṅkara Arihanta Jinas* who attained *Nirvāṇa* and prior to that they had preached the Jaina philosophy and way of life in the descending phase of the time

cycle. Jains are the followers of *Jinas* i.e., conquerors or victors who have conquered their inner enemies of attachment, aversion, delusion, anger, conceit, deceit, greed, etc. Whosoever is blemishless, pure and perfect is a *Jina* and they are venerated and revered. Thus we see that personality worship in place of worship of a person is unique in Jainism.

2. Supreme Pursuit:

Jaina philosophy is to be lived and is not merely for an academic pursuit. The propounder of this philosophy did not merely know the reality but experienced the reality and lived the spirit of the reality. The realization of the truth permeated every fibre of their being and living. The self-realized, enlightened teachers of the Jains, who are the gods of the Jains preached not by words but by their deeds the need for conversion from materialism to spirituality, from violence to non-violence, and from unrestraint to self-restraint in order to liberate oneself from perversion (*mithyātva*), delusion (*moha*), *karma*, rebirth and suffering. The *Jinas* too were bondaged souls in their past but when they exerted to realize, purify and conquer themselves they became the self-sovereign, liberated souls. They are not the creator gods or law makers but are the law abiders who taught one and all to abide by the laws of nature and spirituality.

3. Role models:

The Jains greet each other by saying '*Jai Jinendra*' which literally means victory to the *Jinas*. But the *Jinas* are detached pure souls who will neither shower any grace nor curse anyone. They are *Vitarāga* i.e., conqueror of attachment and aversion and role models for the ardent seekers. Whosoever follows the path preached by them and conquers attachment and aversion, masters the great spiritual virtues of equanimity (*samatā*) and compassion (*karuṇā*) and experiences his pure self shall evolve to the state of *Jina* or godhood. When we greet each other by saying *Jai Jinendra* we recognize the divinity latent in each one of us and wish that may victory be to the *Jina* in you and in me. In other words may we all evolve spiritually and liberate ourselves from the shackles of *karma* and rebirth as the omniscient *Jinas* have accomplished. This is supreme obedience and

true worship.

4. Emphasis on spirituality and non-violence:

The Jain teachers emphasized on spirituality and spiritual way of living as the summum-bonum of life. It is from this insight that the great principle of *Ahimsa* emerged which is the basis of Jaina ethics. This principle of *Ahimsa* is an ancient one, and of great relevance today. The Jaina ethics which is the heart of Jainism promotes an eco-friendly non-violent, compassionate awakened and spiritual way of living. This is not based on any dogma or blind faith but is grounded in reason and rationality with a great concern for all micro and macro life forms. This uniqueness of Jainism makes this philosophy universally relevant.

Albert Einstein remarked that science can denature plutonium but it cannot denature the evil in the heart of man. Science coupled with spirituality is the need of the hour. Jainism is one of the oldest living religions, which establishes that all life is connected and mutual co-existence is the *mantra* for sustainable development. The scriptures reveal that there is a deep inter-relationship between man and man as well as man and the environment at large. Jainism has paved the path of spiritual progress through discrimination between right and wrong, purity of thought, word and deed, compassion for the meek creatures, concern for the environment and above all self-restraint for victory of the self. Since ages it has advocated that self-restraint is the key to equitable and sustainable development and the practice of these basic vows is the for*mula* for an eco-friendly life style. 'Scientific vision is to know the reality and spiritual mission is living the reality to combat the global crisis.'

5. Regard for all life-forms:

Jainism presents a truly enlightened perspective of equality of all souls irrespective of the different physical forms of living creatures be it humans or animals or the micro organisms. All life is sacred and all living beings desire to live, none wants to die, so reveals the Ācarāṅga Sūtra. There are infinite souls in the 8.4 million species[3], grouped as earth, water, fire, air, plant and mobile beings. Lord Mahavira said whomsoever you desire to kill, abuse, insult,

injure, torture is your own self. The practice of *Ahimsa* includes the ways of refraining from violence towards oneself and violence towards all others which includes the micro beings of earth, water, fire, air and plants. As long as there is ignorance of the self, perversion and delusion, it is violence towards oneself. Lord Mahavira insisted upon the observance of non-violence in thought, word and need at the individual level and at the collective level. He revealed that all life is interdependent (*parasparopagrago jīvānām*) and the religion which comprises of *ahimsa,* self-restraint and austerity is the supreme religion.

6. Significance of vows:

The observance of the five great vows of non-violence, truthfulness, non-stealing, celibacy and non-possession (non-attachment) for an ascetic and the observance of the twelve minor vows by a householder along with other advanced spiritual and religious practices which have social, ethical and spiritual significance are unique in Jaina faith. Rituals and dogmatic practices are of very little significance in the absence of rational vision, rational knowledge and rational conduct. Jainism teaches the art of right living through the observance of the vrata culture and the art of dying through the great practice of *Sallekhanā*[4].

7. Nature of Dharma:

'Dhammo vatthu sahavo, khamādibhāvo ya dasaviho dhammo.

Rayaṇattayam ca dhammo, jivāṇam rakkhaṇam Dhammo'[5].

i.e., the essential nature of a thing is called *dharma*. The ten virtues, i.e., forgiveness etc., are the ten forms of *dharma*. The three jewels, i.e., right faith, right knowledge and right conduct, constitute the *dharma* (religion). To render protection to all living beings is also *dharma*.

Jaina religion inspires, motivates, teaches and guides one and all to realize the soul as well as other elements that interact with it. *Vatthu sahavo dhammo* is dharma or religion i.e., the nature of all things is its *dharma*. The nature of the soul is the ten supreme virtues of *kṣamā* (forgiveness), *mārdava* (humility), *ārjava* (straight

forwardness), *śauca* (purity), *satya* (truthfulness), *sañyama* (self restraint), *tapa* (austerity), *tyāga* (renunciation), *brahmacarya* (celibacy) and *ākincanya* (detachment)[6]. These can be realized by the practice of the three-jewels of right-vision, right-knowledge and right conduct. As a result of the practice of the triple jewels; compassion towards all life forms becomes a way of life. This secular path of *dharma* enables one to realize one's true potential on one hand and remain connected with all other in the most non-violent and compassionate way. From the individual's point of view, the inner spiritual wisdom is to be tapped by following this *dharma*, from the social point of view purification of one's thoughts, perception and conduct enables him to contribute his worth for a just and equitable society and from the environment point of view, sustainable development becomes a way of life which is the need of the hour.

8. Sacred scriptures are in the language of the masses:

Although Jain religion owes its origin to the teachings of the first propounder *Tīrthaṅkara* Ṛṣabha, its sacred literature that is available today was revealed by the last and the 24th *Tīrthaṅkara* Lord Mahavira in about 600 B.C. Until then the principles, tenets, doctrines, rituals and practices as they kept evolving remained preserved in memory as per the then prevalent oral tradition and passed on from generation to generation by *Śramaṇas* (ascetics). Its scriptural literature together with learned commentaries written in later centuries by learned ascetics run into volumes. They provide a treasure house of information in a rationally presented and scientifically articulated manner of the spiritual and philosophical aspects reinforced by relevant knowledge; the basis of yoga and meditation techniques, cosmology, metaphysics, astronomy, astrology, mathematics, literature, history, geography, art, logic, music, stories and event narration. They also mirror the then prevailing socio-cultural environment, customs, traditions and the folklore[7]. The scriptures are in different shades of *Prākrit* which was the spoken language in those days. The Jains adopted the language of the people to communicate the rich spiritual tenets. **(Continue)**

References:

1. Jainism and the New Spirituality, by Vastupal Parikh, Ph.D.
2. Āvaśyaka Sūtra, Ed by Madhukar Muni
3. Ibid
4. Ibid
5. Saman Suttam compiled by Sri Jinendra Varni
6. Tattvārtha Sūtra Ed by K.K Dixit
7. Portrait of Jain Religion by Dr. N. P. Jain

-Asst. Prof. & Head, Dept. of Jainology, University of Madras, Chennai-5

प्रभो महावीर! अब उजाला कीजिए

श्री देवेन्द्रनाथ मोदी

अज्ञान-तम अब दूर कीजिए
प्रभो! महावीर अब उजाला कीजिए।
जन्म-जन्मों से भटकती आत्मा को
सम्यक्-दृष्टि अब दीजिए।। प्रभो महावीर.....
महामहिम मुझको सहारा दीजिए
सर पर हाथ हो तुम्हारा, सम्बल यह पा सकूँ
प्रभो! महावीर अब यह वर दीजिए।
राग के उत्तुंग टीले, द्वेष की गहरी खाई
नहीं आज तक मन की धरा समतल हो पाई।
न रुक सका तृष्णाश्व उम्र भर
जिन्दगी वृथा गई, यह शाम फिर घिर आई
रात के अन्धेरे से प्रभो, अब बचा लीजिए।। प्रभो महावीर.....
गुरुदेव से जो कुछ है मिला
अनमोल है, है यह बेमिसाल
तुझमें जो कुछ भी है दिखा
उससे हो गई नज़र है निहाल।। प्रभो महावीर.....
दर्श प्रभो तेरा हो यह है मेरी आरजू
तेरा दर बने मंजिल मेरी
मेरे मन की यह आवाज है
उम्र भर की मेरी प्यास को दो बूँद अमृत दीजिए।। प्रभो महावीर.....

-"हुक्म", 5-ए/1, सुभाषनगर, पालरोड़, जोधपुर-342008 (राज.)

धारावाहिक

लगन की वेला (2)

श्री उमेशमुनि जी 'अणु'

छात्रों का परीक्षण और सम्मान

प्रमुख कलायतन का सारे देश में गौरवपूर्ण स्थान था। वहाँ प्रतिभाशाली छात्रों को ही प्रवेश मिलता था। वहाँ अधिकांशतः अभिजात-वर्ग की संतानें ही अध्ययन करने जाती थीं। उनमें भी जो विशेष सम्पन्न परिवार के होते या जिन्हें किसी सम्पन्न व्यक्ति अथवा अधिकारी जन का संरक्षण प्राप्त होता था, वे छात्र ही वहाँ अध्ययन करने का गौरव प्राप्त कर सकते थे। साधारण जनता में उस कलायतन का मात्र दबदबा ही था, परन्तु अभिजातों में उसके प्रति बहुत ही सम्मान था। प्रत्येक ऐश्वर्य-सम्पन्न जन अपने पुत्रों को वहाँ अध्ययन करवाने के स्वप्न देखता था।

कलायतन का अध्ययन-काल अष्टवर्षीय था। अन्य स्थानीय कलायतनों में प्रारंभिक द्विवर्षीय अध्ययन कर लेने के बाद पूरी दश वर्ष की आयु में छात्र को वहाँ प्रवेश दिया जाता था। वहाँ प्रवेश पाने के बाद छात्र को निरन्तर वहीं रहना होता था। कोई अनिवार्य प्रयोजनों के सिवाय छात्र घर पर नहीं जा सकता था। स्वजन-परिजन छात्रों से वहाँ मिलने आ सकते थे, परन्तु वे वहाँ किञ्चित् समय ही ठहर सकते थे। छात्रों के अध्ययन में किसी प्रकार व्यवधान उपस्थित न हो इस बात का आगंतुकों को पूरा ध्यान रखना होता था। वहाँ आठ वर्ष तक अध्ययन करने के बाद छात्र कला में निष्णात हो जाते थे। अन्त के तीन मास का सत्र उन्हें नागरी संस्कारों को प्रदान करने के लिये होता था। इस प्रकार छात्र वहाँ ज्ञान, सदाचार और व्यवहार से सम्पन्न हो जाते थे। उसके बाद स्वयं कलाचार्य उन छात्रों को ले जाकर उनके पिताओं को सौंप देते थे। तब उनके माता-पिता कलाचार्य की उपस्थिति में ही अपनी योग्यता के अनुसार एक सभा में छात्रों की परीक्षा लेकर, कलाचार्य को पुरस्कार और कलायतन को प्रीतिदान प्रदान करते थे।

ऐसा ही एक दूसरा कलायतन कन्याओं का भी था।

उन कलायतनों से निकले हुए छात्र-छात्राएँ विनय, सौजन्य, शिष्टता, सभ्यता, संवाद-कला आदि चारित्रिक गुणों से सम्पन्न रहते थे। अधिकांश छात्र-छात्राएँ समाज को अलंकृत करती थीं और कई उत्तम अधिकार-पदों को सुशोभित करती थीं।

आचार्यदेव श्री मुनिचन्द्रजी महाराज के स्थिरवास के पूर्व ही आठ वर्ष पहले शिवसुन्दर

और गंगेश को उसी कलायतन में अभ्यास के लिये भेजा गया था। अब उनका अध्ययन पूर्ण हो गया था। उस कलायतन की परम्परा के अनुसार उनके लिये दीक्षान्त-प्रवचन भी हो गया था। उनके घर पर यह संदेश आ गया था कि कलाचार्य उन्हें माता-पिता को सौंपने के लिये आ रहे हैं। उनके स्वजन-परिजनों की सभा में उनका कला-परीक्षण होगा और बाद में कलाचार्य को पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। उनके पिता गुणसुन्दर और महेश्वरदत्त उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

यथासमय दोनों छात्रों को साथ लेकर कलाचार्य का आगमन हुआ। कुंकुम के तिलक, अक्षत और श्रीफल से तीनों को बधाया गया। महिलाओं ने देवी सरस्वती और सरस्वती-नन्दन कलाचार्य की महिमा के मंगल-गीत गाये और कलाचार्य को योग्य स्थान पर ठहराया। दोनों युवक आठ वर्षों बाद घर पर आकर और पूज्यजनों से मिलकर प्रसन्न हुए।

गुणसुन्दर और महेश्वरदत्त अपने-अपने पुत्रों की परीक्षण सभा अपने-अपने घरों पर करना चाहते थे। तब कलाचार्य ने समझाया-"भद्र! इसमें समय का व्यय अधिक होगा। जन-समुदाय भी विभाजित हो जायेगा। परीक्षक अलग-अलग नियुक्त करने होंगे। इससे यह अच्छा होगा कि आप किसी एक स्थान पर परीक्षण-सभा आयोजित कर लें और योग्य निर्णायक को नियुक्त कर लें।"

दोनों कलाचार्य की बात से सहमत हो गये। अब प्रश्न यह उठा कि किसे अन्तिम परीक्षक और निर्णायक चुना जाय। तब सार्थवाह गुणसुन्दर ने कहा- "हम नगर के कई प्रमुखजनों को आमन्त्रित करें। उनमें नगरश्रेष्ठी को भी आमन्त्रण दे दें और उन्हें ही सभा में इस पद को अलंकृत करने के लिए निवेदन करें।"

महेश्वरदत्त ने निराश स्वर में कहा-"वे व्यस्त और बड़े जन ठहरे! उन्हें कौन आमन्त्रण देने जायेगा और वे क्या अपने आमन्त्रण से आयेंगे भी!" गुणसुन्दर ने इस बात का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए कहा-"आमन्त्रण देने मैं जाऊँगा। वे ऐसे कार्यों में रुचि रखते हैं। मुझे विश्वास है कि वे अवश्य आयेंगे। कदाचित् न आयेंगे तो हम नगर-प्रमुखों में से किसी अन्य को इस पद के लिये चुन लेंगे।"

सार्थवाह गुणसुन्दर ने अन्य स्थान पर अन्य को आमन्त्रण देने भेज दिया, परन्तु नगर श्रेष्ठी के यहाँ वे स्वयं गये। सागरचन्द्र ने उन्हें बड़े सम्मान से बिठाया और आने का प्रयोजन पूछा- "आज तो बहुत दिनों में आपके दर्शन हुए। किस हेतु से आपका पदार्पण हुआ। कृपा करके बताइये।"

"आपको यह तो ध्यान में ही होगा कि अपने शिवसुन्दर को आठ वर्ष पूर्व कलायतन में अध्ययन के लिये भेजा था"-प्रसन्नता से सार्थवाह गुणसुन्दर ने कहा-"आज शिवसुन्दर

और गंगेश दोनों अध्ययन करके घर लौट आये हैं। मध्येश्वर शिव-मन्दिर के प्राङ्गण में उनकी परीक्षण-सभा है। आपको वहाँ पधारना है, यह प्रार्थना करने आया हूँ।''

''बहुत अच्छी सूचना दी आपने, यह तो मेरी रुचि का ही विषय है और शिवसुन्दर के प्रति मेरे हृदय में वात्सल्य है ही। यह तो मेरा अपना ही काम है। किसी के साथ आप सूचना भिजवा देते तो भी मैं आ जाता-'' नगर श्रेष्ठी ने अपना सौजन्य प्रदर्शित किया।

''ऐसा कैसे हो सकता है कि यह आमन्त्रण आपके पास अन्य व्यक्ति के साथ भेजूँ? आपकी कृपा के लिये मैं अनुगृहीत हूँ''-गुणसुन्दर बात को पक्की करने के लिए पुनः बोले-''आप कार्य में व्यस्त रहने वाले जीव हैं। कहीं भूल न जायें। यही दिवस का चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ होते ही यह कार्य प्रारम्भ हो जायेगा। तो अब मैं निश्चिन्त हूँ कि आप अवश्य पधार जायेंगे।''

सागरचन्द्र ने हँसते हुए कहा- ''हाँ! हाँ! आप निश्चिन्त रहिये, मैं समय पर उपस्थित होने का अवश्य ध्यान रखूँगा।''

सार्थवाह वहाँ से विदा हो गये। सागरचन्द्र के हृदय में विचार आया-''अरुण नगर के कलायतन में पढ़ता है। इन कलायतनों की परीक्षा प्रणाली निराली है। अतः उसकी परीक्षण-सभा तो होगी नहीं। मैं उसे अपने साथ ले लूँ। वह भी देखे कि प्रमुख कलायतन में अध्ययन करने वालों का कितना गौरव होता है?'' उन्हें पता था कि अरुण अभी ही भीतर गया है। इसलिए उन्होंने वहीं बैठे-बैठे पुकारा- ''अरुणऽऽ! अरुणऽऽ'' अरुण ने पिता की आवाज सुनी। वह जल्दी से पिता के पास आया और विनय से पिता के समीप खड़ा हो गया। तब सागरचन्द्र ने कहा- ''देखो तो वत्स! अभी गुणसुन्दर जी आये थे। उनका पुत्र शिवसुन्दर और महेश्वरदत्त का पुत्र गंगेश प्रमुख कलायतन से अध्ययन करके लौट आये हैं। आज उनकी परीक्षण-सभा है। वहाँ आने का मुझे आमन्त्रण दिया है और मैंने भी उन्हें पहुँचने का वचन दिया है। अतः मैं वहाँ जाऊँगा। तुम भी वहाँ चलना। ऐसी सभाओं में जाने से अनुभव की वृद्धि होती है।''

अरुण का किसी भी सभा, परिषद् या गोष्ठी में जाने का मन नहीं होता था, क्योंकि वहाँ का वातावरण उसकी प्रकृति से मेल नहीं खाता था। परन्तु इस परीक्षण-सभा में जाने का उसका मन हो गया। यह विद्यार्थियों की परीक्षण सभा थी, जिसमें उनकी परीक्षा के पश्चात् उनका मान-सम्मान भी किया जाना था। अन्य सभा-गोष्ठियों में तो वह कई बार गया था- किसी के दबाव से तो किसी की प्रेरणा से। परन्तु ऐसी किसी भी सभा में उसे जाने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। अतः कौतुक, जिज्ञासा आदि कारणों से वह सहज प्राप्त अवसर का लाभ खोना नहीं चाहता था। उसने दृष्टि ऊपर उठायी तो पिता को अपनी ओर

देखते पाया। उसने पूछा- "तात! समय कौन-सा है?"

सागरचन्द्र उसके उत्तर से कुछ प्रसन्न हुए। वे बोले-"यही, चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ होते ही। इस समय तो तुम्हें कोई कार्य नहीं रहता।"

"जी"-वह बोला- "हमारा शिक्षण समाप्त हो गया है। परीक्षाएँ हो गयी हैं। आज निष्कर्ष जानने के लिये कलायतन जाना है। तृतीय प्रहर के अन्त तक वहाँ रहना होगा।"

"अच्छा, तुम्हारा शिक्षण समाप्त हो गया। आज अन्तिम निष्कर्ष जानना है? मुझे तो कुछ पता ही नहीं! कैसे हैं-ये कलायतन?

"तो क्या तुम वहाँ नहीं आ सकोगे?"-सागरचन्द्र ने निराशा से प्रश्न किया।

"तात! आने की मेरी इच्छा तो है। पर कलायतन जाना भी आवश्यक है। परीक्षण-सभा कहाँ होगी?"

"मध्येश्वर शिव-मंदिर के प्राङ्गण में।"

"तब तो ठीक है, तात! मैं कलायतन से लौटकर सभा-स्थान के बाहर आपकी प्रतीक्षा करूँगा, क्योंकि वह स्थान मेरे मार्ग में ही है।"

"बहुत ठीक! बहुत ठीक!"- सागरचन्द्र हर्ष के साथ बोले।

अरुण अपने कार्य से चला गया। सागरचन्द्र सोच रहे थे-"मुझे परीक्षण-सभा में आमन्त्रण है। इसका स्पष्ट आशय यह है कि मैं परीक्षक या निर्णायक की कोटि में रखा जाऊँगा। यद्यपि यह पद्धति नहीं है कि परीक्षक या निर्णायक कलाचार्य को पुरस्कार दें, यह तो छात्र के पिता का कर्त्तव्य है, फिर भी मेरी ओर से कुछ पुरस्कार प्रदान करना उचित ही है और छात्रों का सम्मान तो मेरी ओर से होना ही चाहिये।"

उन्होंने एक लघु रत्न-करण्डक में एक स्वर्ण-खचित बहुमूल्य मणिमाला और दो सुन्दर मुक्तामालाएँ रख लीं और उस करण्डक को व्यवस्थित रूप से रख दिया। यथासमय वे उस वस्त्राच्छादित करण्डक को लेकर रथ के द्वारा मध्येश्वर शिव-मन्दिर की ओर रवाना हुए।

रथ शिव-मन्दिर के समीप पहुँचा। सारथि अश्व की गति मंद कर रहा था। श्रेष्ठी ने शिव-मंदिर के बाह्य अलिंद में दृष्टि डाली तो उन्हें कई जनों के बीच में खड़ा हुआ अरुण दिखाई दिया। आज अचानक ही उनका ध्यान अरुण की वेशभूषा पर गया। घर में उन्होंने कभी उसके वस्त्रों पर ध्यान दिया नहीं और बाहर वह कभी उनके साथ रहा नहीं। उसका परिधान श्वेत मोटे वस्त्रों का था। वे वस्त्र बहुत निम्नकोटि के थे। ऐसे वस्त्र तो उनके मुनीमों के भी नहीं थे। उसका परिधान देखकर उनके हृदय को आघात लगा। एक बार तो मन में ऐसी विरक्ति उभरी कि इसके साथ भीतर प्रवेश नहीं करना, इसे यहीं से घर लौटा दूँ। पर वे

दक्ष व्यापारी थे। भावना के बहाव में न बहकर, संतुलित व्यवहार कैसे करना, इसमें वे अत्यन्त पटु थे। रथिक ने अश्व की वल्गा खींची। रथ रुका। वे रथ से उतरे। अरुण समीप आया। उसे देखकर मुस्कराये और बोले- ''अच्छा, आ गये। चलो भीतर चलें।''

उन्होंने वह वस्त्राच्छादित करण्डक अरुण के हाथ में देकर कहा- ''इसे सम्हाल कर रखो। मैं जब माँगू तब देना।'' प्रायः लोग भीतर प्रवेश कर गये थे। इक्के-दुक्के जन ही बाहर थे। कई अश्वरथ इधर-उधर खड़े थे। इससे सहज में ही यह अनुमान लग गया कि कई प्रमुखजन और अधिकारीजन आये हैं। कुछ शिविकाएँ भी उनके स्थान पर रखी थीं, क्योंकि कई उच्च अधिकारी भी आये थे। इधर-उधर दृष्टि डालकर अनुमान लगाते हुए सागरचन्द्र ने अरुण के साथ भीतरी प्राङ्गण में प्रवेश किया।

प्राङ्गण विशाल था। स्तम्भ कलापूर्ण थे। वहाँ मन रम जाये, ऐसा वातावरण था। कई सौ जन पंक्तिबद्ध बैठे हुए थे। उनके सन्मुख विशाल चौंतरे जैसा पीठ था। कलापूर्ण चार स्तम्भों पर कलामय छत टिकी हुई थी। छत में और पृष्ठ की भित्ति में शिवजी के जीवन से सम्बन्धित अनेक दृश्य उत्कीर्ण थे। उस पीठ पर कई भद्र पुरुष बैठे हुए थे। वह योग्य सभा-भवन था। वहाँ लोग व्यवस्थित रूप से बैठे हुए थे। महेश्वरदत्त और सार्थवाह ने नगरश्रेष्ठी को प्रवेश करते हुए देखा। वे उनकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्होंने उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें यथास्थान बिठाया।

कलाचार्य ने भी शिवसुन्दर और गंगेश के साथ प्रवेश किया। लोगों ने खड़े होकर कलाचार्य का सम्मान किया। उनके लिये लगे हुए भद्रासन पर वे विराजमान हुए और उनके सम्मुख ही दोनों छात्र बैठ गये। अब कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

दो बालिकाओं ने सरस्वती देवी के वन्दना-गीत से मंगलाचरण किया। फिर अन्तिम परीक्षक और निर्णायक के स्थान पर नगरश्रेष्ठी को स्थापित किया गया। इसके बाद कलाचार्य ने संक्षिप्त वक्तव्य दिया और उसके अन्त में कहा- ''हमारे कलायतन में आपके यहाँ के दो छात्र-रत्नों को शिक्षण प्रदान किया गया। उनकी बुद्धि को माँजा-सँवारा और सजाया गया। वे आपके सन्मुख उपस्थित हैं, जिनकी शिक्षा की आप परीक्षा करेंगे। हमने शिक्षण-कार्य करके हमारा कर्त्तव्य पूर्ण किया। अब आप इनकी परीक्षा करके इन्हें नागरिक के पद पर आरूढ़ बनने में सहायक बनिये।''

कलाचार्य के वक्तव्य के बाद उनकी परीक्षा होने लगी। स्वजन, परिजन और प्रमुखजनों में से कइयों ने विविध विषयों में उनकी परीक्षा ली। समस्त कलाओं में उनकी दक्षता व्यक्त हुई। अब अन्तिम प्रश्न प्रासंगिक वक्तव्य और परीक्षा के निर्णय के साथ, नगरश्रेष्ठी की ओर से उपस्थित हुआ- ''मानव-जीवन में कलाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कला मानव-जीवन की विशेषता है। कला से विहीन मानव पशु के तुल्य है। अतः सफल जीवन जीने के लिये कलाओं का ज्ञान अनिवार्य है। आप दो नवयुवक कलानिधि कलाचार्य से कलाओं का सुचारू रूप से अध्ययन करके हमारे समाज में प्रतिष्ठित सदस्य के रूप में सम्मिलित होने के लिये समुद्यत हैं। आपने अपनी कला की दक्षता का परिचय दिया, जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता है। हमें आशा है कि आप हमारे प्रतिष्ठित, सफल और श्रेष्ठ नागरिक बनेंगे। अब मेरी ओर से यह छोटा-सा प्रश्न है कि आप कला का कैसा उपयोग करेंगे और उसकी सार्थकता किसमें है?''

गंगेश ने खड़े होकर उत्तर दिया-''जीवन को सँवारने में और आनन्दानुभूति करने में ही कला की सार्थकता है। कला जीवन के सभी क्षेत्रों को स्पर्श करती है। अतः हम जहाँ जिसका जैसा प्रसंग होगा, वहाँ वैसा उसका उपयोग करेंगे।''

पश्चात् शिवसुन्दर ने उत्तर दिया-''जब तक मनुष्य खाली पेट रहता है- भूखा रहता है, तब तक सभी कलाएँ निरर्थक होती हैं। जो कलाएँ मनुष्य को जीवन के साधन प्रदान करती हैं, वे कलाएँ स्वयं सार्थक होकर अन्य कलाओं की सार्थकता की भूमि तैयार करती हैं। कला का उपयोग, अपने पराये के जीवन को संस्कारित करने में, मनोरंजन में, सुख उत्पन्न करने में और हित करने में करना हितावह है और मैं इसी दृष्टि से कला के उपयोग की भावना रखता हूँ।''

नगरश्रेष्ठी और वहाँ उपस्थित जनसमुदाय उनके उत्तरों से सन्तुष्ट और प्रसन्न हुआ। नगरश्रेष्ठी ने उनके उत्तर की समीक्षा करते हुए कहा-''दोनों युवकों के उत्तर संतुष्टि-कारक हैं। गंगेश की दृष्टि कला के उपयोग में व्यावहारिकता को प्रधानता देती है और सार्थकता में लौकिक आदर्श को तथा शिवसुन्दर की दृष्टि कला की सार्थकता में व्यावहारिकता को प्रधानता देती है और उसके उपयोग में आदर्श को।''

उन्होंने अरुण के हाथ से रत्न-करण्डक लेकर मणिमाला निकाली और कलाचार्य के हाथ में थमाते हुए कहा-''यह आपके लिये है। भाई गुणसुन्दरजी और महेश्वरदत्तजी बुरा न मानें। मैं उनके कर्त्तव्य में हस्तक्षेप नहीं कर रहा हूँ। अरुण वहाँ कलायतन में पढ़ने जाता तो मुझे इससे अधिक पुरस्कार देना ही पड़ता। यह मेरी तुच्छ भेंट मात्र है- आप स्वीकार करें।'' लोग उनकी ओर देख रहे थे। उन्हें आश्चर्य था कि नगरश्रेष्ठी मर्यादा का उल्लंघन क्यों कर रहे हैं?

अरुण यहाँ के कार्यक्रम से प्रभावित था। उसे शिवसुन्दर और गंगेश की कला-कुशलता से प्रसन्नता हुई। फिर उसने उन्हें पूछे गए अधिकांश प्रश्नों के उत्तर अपने मन में सोचकर अपने ज्ञान की उनके ज्ञान के साथ तुलना की और उससे निकले निष्कर्ष से उसने

संतोष अनुभव किया। परन्तु पिता ने जब उसके नामोल्लेख-पूर्वक कलाचार्य को मणिमाला प्रदान की, तब पिता का उसे यहाँ लाने का उद्देश्य उसके मन में व्यक्त हुआ। उसके मुख पर मुस्कराहट आ गयी।

सार्थवाह गुणसुन्दर और महेश्वरदत्त नगरश्रेष्ठी के द्वारा बहुमूल्य मणिमाला कलाचार्य को प्रदान करते हुए देखकर उलझन में पड़ गये। यह परीक्षक पद की मर्यादा से विपरीत बात थी। परन्तु मणिमाला कलाचार्य के हाथ में पहुँच गयी थी। अब उनके द्वारा विरोध कलाचार्य और नगरश्रेष्ठी दोनों के लिए अशोभनीय होगा। वे मन मसोस कर उदासीन हो गये।

कलाचार्य ने सारी परिस्थिति समझ ली। वे उठे और मणिमाला नगरश्रेष्ठी को लौटाते हुए बोले- ''यह दोषपूर्ण परम्परा डालना उचित नहीं है। आज आप नगरश्रेष्ठी परीक्षक और निर्णायक के आसन पर विराजमान हैं। आपमें इससे भी अधिक पुरस्कार प्रदान की शक्ति है। परन्तु इस पद की भी कुछ मर्यादाएँ हैं। यह पद उत्तम बुद्धि के स्वामी को ही प्रदान किया जाता है। यदि इसके साथ पुरस्कार की बात जुड़ जायेगी तो इस पद की गरिमा घट जायेगी। दूसरी बात, मुझे भी अपनी मर्यादा का पालन करना होगा। मैं छात्रों के माता-पिता के द्वारा प्रदत्त पुरस्कार को सहर्ष ग्रहण करूँगा। उनसे पुरस्कार पाने का मेरा अधिकार है, अन्य से नहीं।'' यह कहकर कलाचार्य बैठ गये। जन-समुदाय में से, उनके बैठते ही 'धन्य है, धन्य है' की ध्वनि उठी और लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। सार्थवाह और महेश्वरदत्त को लगा कि कलाचार्य ने उन्हें बहुत बड़ी दुविधा से उबार लिया। उनकी आँखों में कृतज्ञता के अश्रु भर आये। उस समय नगरश्रेष्ठी अपनी त्रुटि समझकर लज्जित हो गये।

सार्थवाह गुणसुन्दर और महेश्वरदत्त ने कलाचार्य और कलायतन को बहुत भारी पुरस्कार और प्रीतिदान दिये। परिजन और प्रमुखजन दोनों छात्रों का सम्मान कर रहे थे और वे उन्हें प्रणाम कर रहे थे।

नगरश्रेष्ठी ने रत्नकरण्डक से मुक्तामालाएँ निकालीं और उन्हें अरुण के हाथ में देते हुए कहा- ''मेरा लघु पुत्र इन दोनों से कुछ मास ही छोटा होगा। अतः इन दोनों का लगभग समवयस्क ही है। मैं चाहता हूँ कि यह मेरी ओर से इन दोनों विद्यार्थियों का सम्मान करे।'' कहते तो उन्होंने कह दिया, परन्तु अरुण जब खड़ा हुआ और उनका ध्यान उसकी वेशभूषा पर गया तो मन पश्चात्ताप से भर गया।

अरुण उठा। लोगों का ध्यान वेशभूषा की ओर नहीं, उसके प्रशान्त और प्रसन्न मुखमण्डल पर था। कलाचार्य ने जब उसे मौन रूप में विद्यार्थियों की ओर आते देखा, तब उन्होंने समुस्कान उसे कहा- ''वत्स! अपने वयस्कों का सम्मान यों मूक रहकर ही करोगे?'' अरुण कलाचार्य की चुटकी से मुस्कराया। फिर वह मधुर स्वर में बोला-''आप

अभी तक विद्यार्थी थे और मैं भी विद्यार्थी हूँ। आपकी परीक्षण सभा में आकर मुझे प्रसन्नता हुई। तात ने अपनी ओर से मुझे आपका सम्मान करने का अवसर प्रदान किया। यह मेरा अहोभाग्य है और साथ ही कलाचार्यजी ने मुझे मुखर बनने की प्रेरणा दी। इसलिए उनके चरणों में प्रणाम। पहले पिताजी की ओर से आपका सम्मान कर दूँ और फिर अपनी ओर से''- अरुण ने उनके समीप जाकर उनके कण्ठ में मुक्तामालाएँ डाल दीं और मुस्कराकर धीमे-से कहा- ''धर्मकला सब कलाओं को जीत लेती है, बन्धु!'' यह वाक्य वह इतना धीमे-से बोला कि उसे मात्र शिवसुन्दर और गंगेश ही सुन सके। गंगेश तो उसकी बात सुनकर मुस्करा दिया, परन्तु शिवसुन्दर गम्भीर हो गया।

अब अरुण प्रसन्नता से जनसमुदाय की ओर मुख करके, उन दोनों के पास खड़ा हो गया। पूरे जनसमुदाय का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो गया। उसने बोलना प्रारम्भ किया और लोगों को ऐसा लगा, मानों उसके मुँह से फूल झर रहे हैं। वह बोल रहा था- ''बन्धुओं! मैं आपका लघु बन्धु हूँ। मैं आपका सम्मान क्या करूँ? मैं तो आपको प्रणाम कर सकता हूँ। मैं प्रणाम करके आपसे यह प्रार्थना करता हूँ कि आपने कलायतन में अभ्यास करके कलाओं को उपलब्ध किया है। अब आप कलाओं के प्रयोग क्षेत्र सामाजिक जीवन में चरण रख रहे हैं। आप उन कलाओं का यथायोग्य प्रयोग करके महानता का वरण करें- यही मेरी प्रार्थना है। अभिनन्दन के लिये गीत की दो कड़ियाँ प्रस्तुत हैं-

आओ मेरे बन्धु! तुम्हारा अभिनन्दन।
बनो ज्ञान के सिंधु! तुम्हारा अभिनन्दन।
कर अभ्यास कलाएँ पायीं जीवन की गुत्थी सुलझायी
बनिये जग के बंधु, तुम्हारा अभिनन्दन
आओ हँसते-हँसते जीवन जीओ
तात कहे-तुम सुख-रस पीओ
मुक्त रहो मम बन्धु! तुम्हारा अभिनन्दन....।

अरुण के कण्ठ में अनूठा माधुर्य था। उसके गान की सहज कला से लोग झूम उठे। गीत का काव्यरस तो नहीं, परन्तु सौहार्द भाव उन दोनों विद्यार्थियों को छू गया। वे दोनों ही अरुण के प्रति आकर्षित हो गये। जनता भी भाव-विभोर हो गयी। श्रेष्ठी ने अपने पुत्र को बोलते हुए पहली बार ही सुना था। उनका 'पुत्र के प्रमुख कलायतन में नहीं जाने से उत्पन्न खेद' आज विसर्जित हो गया। प्रमुख कलायतन के कलाचार्य ने उसे पूछा- ''वत्स! तुम कहाँ अध्ययन करते हो?''

''यहीं, स्थानीय कलायतन में''- उसने संकोच के साथ कहा-''आज मेरा भी

अध्ययन पूर्ण हो गया है।''

''तब तो वत्स! आज बिना किसी औपचारिकता के तुम्हारी भी परीक्षा हो गयी है। तुम्हारे अल्प शब्दों से ही पता लग गया कि तुमने अच्छा ज्ञानार्जन किया है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा ज्ञानमय जीवन सुखी और सफल हो!'' कलाचार्य ने यह कहकर उसकी पीठ थपथपायी और उसने भी कलाचार्य के चरण कमलों में प्रणाम किया। यह दृश्य देखकर नगरश्रेष्ठी गद्‌गद् हो गये।

लगभग दो मुहूर्त्त तक यह कार्यक्रम चला, फिर सभा विसर्जित हुई। **(क्रमशः)**

विचार-वारिधि

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

1. यदि वीतराग की वाणी को सुनकर उसे कोई ग्रहण न करे तो उसकी आत्मा में बल नहीं आएगा, उसमें बुराइयों से जूझने की शक्ति नहीं होगी। ऐसी स्थिति में समझ लेना चाहिए कि श्रोता में कुछ मानसिक रोग अवशिष्ट हैं। सुनी हुई बात का मनन करने से आत्मिक बल बढ़ता है। मनन के बिना सुना हुआ ज्ञान स्थिर नहीं होता।
2. जैसे अज्ञानावस्था में शिशु मल के मर्म को समझे बिना उसमें रमते हुए भी ग्लानि और दुःख का अनुभव नहीं करता और वही फिर होश होने पर मल से दूर भागता और नाक-भौं सिकोड़ता है, वैसे ही सद्‌ज्ञान प्राप्त नहीं होने तक आत्मा अबोध बालक की तरह कर्म-मल लिप्त बना रहता है, किन्तु ज्योंही सद्‌गुरु की कृपा से सद्‌ज्ञान की प्राप्ति हो गयी, फिर क्षण भर भी वह कर्म-मल को अपने पास नहीं रहने देता।
3. संसार के सभी पदार्थ मनुष्य के लिए अनुकूल या प्रतिकूल निमित्त बनकर कार्य करते हैं। जो मनुष्य अज्ञान में सोये हों उनके लिए ये वस्तुएँ, अधःपतन का कारण बन जाती हैं। पर जिनके हृदय में ज्ञान-दीप का प्रकाश फैला हुआ है, उन्हें ये पदार्थ प्रभावित नहीं कर सकते। जागृत मनुष्य पतन के कारणों को प्रभावहीन कर देते हैं। द्रव्य, क्षेत्र और काल की तरह भाव भी मानव के भावों को जागृत करने में कारण बनते हैं, किन्तु 'पर' सम्बन्धी भाव में जैसा अपना अनुकूल प्रतिकूल भाव मिलेगा, उसी के अनुसार परिणति होगी।
4. ज्ञानवृद्धि के लिए प्रवचन सुनने वाले श्रोताओं को लिखने की आदत रखनी चाहिए। इससे मनन का अवसर मिलेगा और कई बातें आसानी से याद रखी जा सकेंगी। आपको अनेक सत्पुरुषों के उपदेश श्रवण का अवसर मिलता है और उसमें कई बातें तो इतनी असरकारक होती हैं कि जिनके स्मरण से जीवन की दिशा बदली जा सकती है और आत्मा को ऊँचा उठाया जा सकता है, किन्तु लिपिबद्ध नहीं होने से वह थोड़े समय में ही मस्तिष्क से निकल जाती हैं।

परिवार-स्तम्भ

सुधरे नारी का परिधान

श्री युगराज जैन

इस देश में प्रतिदिन न जाने कितनी अप्रिय घटनाएँ घट रही हैं कि पूरा अखबार इन खबरों से भरा रहता है। पढ़कर, सुनकर रोज ही आहत होता हूँ। दिल्ली की दामिनी के साथ जो हुआ, उसने मुझे ही नहीं पूरे देश को द्रवित कर सोचने-समझने के लिए मजबूर कर दिया। कई बुद्धिजीवियों ने अपने-अपने विचार रखे, टी.वी. चैनलों पर लम्बी-लम्बी बहस चली। गैंगरेप के दोषियों की पैरवी करने वाले वकील ने तो यहाँ तक कह दिया कि मेरी बेटी-बहन बॉयफ्रेन्ड के साथ देर रात तक घूमती या विवाह से पहले अनैतिक सम्बन्ध रखती तो मैं उसे जिन्दा जला देता। न्याय की पैरवी करने वाला ही अन्याय की बात करे तो निश्चित ही आश्चर्यजनक लगता है। कइयों ने पुरुषों में वासना की भूख देखी, कइयों ने महिलाओं के ड्रेसकोड पर प्रश्न चिह्न खड़े किए।

मेरा यह लेख पढ़कर कई बुद्धिजीवी व स्वतंत्र विचारधारा वाले लोग मुझे भी मानसिक रूप से विक्षिप्त समझ सकते हैं। लेकिन अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होने से मैं अपने विचार रख रहा हूँ।

एक समय था जब लोग नंगे रहते थे। ज्यों-ज्यों मानव विकसित होता गया पत्तों से शरीर ढकने लगे। फिर कपड़ा बना, उद्देश्य मात्र तन को ढँकना। जब मानव इतना विकसित नहीं था तब भी उसे जो सबसे पहले समझ आई, वह तन ढ़कने की थी। क्योंकि उस आदम युग में भी वह कहीं न कहीं तन ढँकने के पीछे की मनोव्यथा को समझा होगा। कालान्तर में कपड़े की मिलें बनी। जब धड़ल्ले से कपड़ा बनने लगा तो नंगे रहने की होड़ सी लग गई है।

अब एक और पहलू देखिए, पहले नारियाँ घूंघट निकालती थीं। क्या सिर्फ चोली व घाघरे से काम नहीं चल सकता था, जो ओढ़नी की जरूरत पड़ी। साड़ी बनी तो पल्लू की जरूरत क्या थी? सलवार-कमीज बनी, तो चुन्नी की जरूरत क्यों पड़ी? क्या हमारे पूर्वज मूर्ख थे? नहीं, वे अच्छी तरह से जानते थे कि नारी के रोम-रोम में कौमार्य भरा है। इसलिए प्राचीन युग से इस बात को समझा गया और पत्ते लपेट कर तन ढँकने की समझ शुरू हुई।

अब बहनों से कुछ सीधे सवाल-

1. तुम पारदर्शी कपड़े क्यों पहनती हो?
2. तुम तंग व बदन से चिपके कपड़े क्यों पहनती हो?

3. तुम स्लीवलेस कपड़े क्यों पहनती हो?
4. तुम जांघे दिखाती निकरें पहन कर क्यों घूमती हो?
5. तुम अपने ब्लाउज के पीछे वाले भाग को अनेक डिजाइनों से सुसज्जित क्यों करती हो?

माफ करें मेरी बहनें मेरे इन बेबाक प्रश्नों के लिए, आपका उत्तर शायद होगा- नारी स्वतंत्रता। क्या नारी स्वतंत्रता के नाम पर नग्नता को परोसा जाए? किसी भी उत्पाद का विज्ञापन करना हो, युवा स्त्री तो चाहिए ही। कोई प्रौढ़ा या वृद्धा नहीं चलती। वह युवा स्त्री भी मर्यादापूर्वक वस्त्रों में नहीं भौंडे वस्त्रों में ही होती है। दाढ़ी बनाने का रेजर बेचना हो तो विज्ञापन में अर्द्धनग्न नारी, कार बेचना हो तो अर्द्धनग्न नारी। यहाँ तक कि पुरुष के अन्तर्वस्त्र का विज्ञापन करना हो तो स्वीमिंग पूल पर कामुक नज़रों से निहारती नारी। क्या इससे यह नहीं झलकता कि स्त्री स्वयं को उपभोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती नज़र आती है।

यदि खाद्य सामग्री खुली पड़ी है तो पशु-पक्षी खाने को दौड़ेगा या नहीं? यदि सम्पत्ति तिजोरी में न रखकर खुले में रखोगे तो चोरों को लूटने में आसानी रहेगी या नहीं? अब ज़रा सोचो क्या खुला रूप वहशी-दरिन्दों के लिए आमंत्रण का कारण बनेगा या नहीं? क्या नदी किनारों के नियन्त्रण के बिना सुरक्षित रह सकती है? क्या आभूषण बिना तिजोरी के सुरक्षित रह सकते हैं? ठीक इसी तरह नारी बिना मर्यादापूर्वक परिधान के सुरक्षित नहीं रह सकती। जिस तरह आग पतंगे को आकर्षित करती है, उसी तरह देह-दर्शना युवतियाँ भी हवसखोरों को आक्रमणकारी बनाने का कारण बनती हैं।

जरा सोचो यदि युवक पारदर्शी शर्ट या टी-शर्ट पहनने शुरू कर दें, बदन से चिपकती जांघे दिखाती निकरें पहन कर सड़कों पर घूमने लगे तो निश्चित ही बहनों के मुख से अनायास ही निकलेगा, "क्या तुम्हारे घर में माँ-बहन नहीं हैं?" अर्द्धनग्न परिधान में देखकर युवक नहीं सोचते होंगे, कि ये ऐसे कपड़ों में पापा या भाई के सम्मुख खड़ी रहने की हिम्मत कैसे जुटाती होंगी?

मेरा स्पष्ट मानना है कि परिधान आकर्षक जरूर हो कामुक नहीं होने चाहिए। एक सफेद साड़ी-ब्लाउज व सफेद पेटीकोट पहन कर बहुत खूबसूरत महिला जा रही हो तो गुण्डा या मवाली लड़का भी उस महिला को नमन करेगा और महसूस करेगा कि कोई वैरागिन बहन जा रही है। ठीक इसके विपरीत ध्यान दौड़ाइए कि कुरूप से कुरूप लड़की भी चुस्त टी-शर्ट व जीन्स या पारदर्शी कपड़े पहन कर सड़क पर गुज़रेगी तो गुण्डे लड़के तो छेड़ेंगे ही, बूढ़े तक भी आँख सेंकने से नहीं रुकेंगे।

मिलिट्री के जवानों की वेशभूषा कुर्ता, पाजामा और चप्पल हो जाए तो मेरा दावा है कि वे युद्धभूमि में राइफल चलाना तो दूर, हाथों में उठा भी नहीं पाएँगे। इसलिए परिधान की प्रवृत्ति को हमें ईमानदारी पूर्वक समझना होगा।

अब लोग तर्क देंगे कि अबोध बालिका ने तो कोई ऐसे परिधान नहीं पहने जो उसके साथ कोई कुकर्म करे। एक कहावत है कि गलती कोई और करता है तथा सजा कोई और पाता है। जब कोई युवक अर्द्धनग्न लिबास में युवतियों को देखेगा, कोई युवक फिल्मों में हिरोइनों के आयटम सोंग नृत्य देखेगा, तो उसके हवस की शिकार अबोध बालिकाएँ अगर हों तो आश्चर्य की बात नहीं है।

इस लेख का उद्देश्य किसी भी प्रकार से महिला के सम्मान को ठेस पहुँचाना नहीं है। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि स्त्री पुरुष का प्यार पाने के लिए अपना शरीर सौंप देती है, लेकिन पुरुष स्त्री का शारीरिक सुख पाने के लिए प्यार करता है।

मेरे कहने से आप एक माँ, बहन या बेटी के नज़रिये से अन्य युवतियों के अंगप्रदर्शक परिधानों को देखना और तब ऐसे परिधानों में आपत्ति नज़र आए, या कामुकता की बू आए तो अपने घर से ही पहल शुरू कर देना। यदि इस आलेख को पढ़कर किसी भी बहन के हृदय को ठेस पहुँची हो तो मुझे मूर्ख भाई समझकर माफ कर देना।

-संपादक, 'युग प्रवाह' पाक्षिक पत्रिका, मुम्बई (महा.)

वर्षीतप से कम हुआ वजन

श्रीमती संतोष सिंघवी

31 जनवरी 2011 को 42 वर्ष 6 माह की लंबी राजकीय सेवा पूरी कर जब मैं प्रधानाध्यापिका के पद से सेवानिवृत्त हुई, उस समय मेरा वजन 85 कि.ग्रा. था। सेवानिवृत्ति के पश्चात् घूमना-फिरना भी कम हो गया था और खाली बैठे रहने से बढ़ते वजन की चिंता थी। संत-सतियों की प्रेरणा से तप करने की भावना प्रबल हुई। सोचा, क्यों न कोई लंबे समय तक चलने वाला तप किया जाय। 15 मार्च 2012 से एकान्तर उपवास प्रारम्भ किया। नियमित सामायिक-प्रतिक्रमण, एकांतर उपवास, तपाराधन के कारण स्वास्थ्य भी सही रहा। हाई ब्लडप्रेशर था वह पूरी तरह समाप्त हो गया। इस तप के दौरान वजन भी 30 कि.ग्रा. कम हो गया। गुरु कृपा से 13 मई 2013 को अक्षयतृतीया के दिन वर्षीतप का पारणा सकुशल सम्पन्न हुआ। तपसाधना के कारण ही मेरा वजन कम हुआ और अब मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ। यह है तप की महिमा।

-'किशन' 1ए/2, पोकरण हाउस, जे.डी.ए. के पास, जोधपुर (राज.)

कविता

धर्म करते रहो, मुस्कुराते रहो

श्री जशकरण डागा

(तर्ज- सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चलें)

धर्म करते रहो, मुस्कुराते रहो।
दिल में ज्ञान की ज्योति, जगाते रहो।।टेर।।
सबसे प्रेम करो, सबके दुःख हरो।
जीवन में सदा सत्कर्म करो।
शुभ भावों में मन को, रमाते रहो।।
धर्म करते रहो.....।।1।।
सामायिक करो, स्वाध्याय करो।
संवर पौषध भी जीवन में धारण करो।
प्रभु भक्ति में मन को, लगाते रहो।।
धर्म करते रहो.....।।2।।
सत्संग करो, त्याग तप भी करो।
दया धर्म से जीवन, सुवासित करो।
पाप तज करके, सब काम करते रहो।।
धर्म करते रहो.....।।3।।
राग-द्वेष तजो, सद्गुणों से सजो।
सुबह-शाम सभी मिल प्रभु को भजो।
समता रस के सरोवर में नहाते रहो।
धर्म करते रहो.....।।4।।
दीन दुःखियों की सेवा भी करते रहो।
जो बने सो भलाई भी करते रहो।
फर्ज अपना सदा ही निभाते रहो।।
धर्म करते रहो.....।।5।।
पाप फल जानकर कर्म नहीं बांधना।
कर्म सत्ता में तब तक करो साधना।
'डागा' धर्म के पथ पर, बढ़ते चलो।।
धर्म करते रहो.....।।6।।

-डागा सदन, संघपुरा, टोंक (राज.)

प्रेरक-प्रसंग

पदरज का प्रभाव

श्री हितेष जैन

प्रकृति करती है वर्षा अमृत बूंदों की, किसान के पुरुषार्थ से खेत लहलहाते हैं।
गुरु की कृपा हो जाये तो, आपदा-विपदा कहाँ ठहर पाते हैं।।

"धर्मो रक्षति रक्षितः"। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। यह उक्ति आज तक पढ़ने व सुनने को मिली कि "प्रकृति किसी की सगी नहीं होती।"। पर वह प्रकृति भी नम्र एवं दयालु हो गई उस महापुरुष के सामने। बचपन से सुनते आ रहे हैं और बोलते आ रहे हैं कि संत-सतियों के पधारने से धरा धन्य हो गई, पर अनुभूति का वो क्षण तो विरल ही था। प्रसंग है भक्ति का सैलाब जिसके रग-रग में दौड़ता है ऐसे पोरवाल क्षेत्र की धर्मपुरी नगरी श्यामपुरा का, जहाँ से 8 मुमुक्षु आत्माएँ जिनशासन की सेवा में समर्पित हैं। वहाँ से आचार्य भगवन्त श्री हीराचन्द्र जी महाराज ने अपनी संतमंडली के साथ 21 फरवरी, 2014 को निकटस्थ गाँव-नगर को पावन करने की शुभ भावना से पदयात्रा प्रारम्भ की। किन्तु प्रकृति रात्रि से ही प्रतिकूल हो रही थी, पर धुन के धनी आचार्य देव ने अपना विहार प्रारम्भ किया और लगभग एक-डेढ किलोमीटर विहार हुआ होगा कि इन्द्रदेव ने बरसना शुरू कर दिया। अभी चकेरी गाँव दूर था, तभी मोड़पर एक किसान भाई का घर (झोंपड़ा) नज़र आया। "सर ढकने के लिए टापरी बहुत।" आचार्यदेव कुछ संतों और सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहने वाले भक्तों के साथ उस कृषक के यहाँ ठहरे। थोड़े समय पश्चात् प्रकृति प्रेमी पूज्य गुरु भगंवत को असाता देना अक्षम्य मान इन्द्रदेव ने भी अपने-आप को थाम लिया। महापुरुष की हवा ही दवा होती है, रज ही रजत बन जाती है। आचार्य भगवन्त तो चकेरी आदि ग्राम फरसते हुए कुस्तला पधार गये।

एक सप्ताह बाद चकेरी ग्राम क्षेत्र में ओलावृष्टि हुई। जिससे किसान वर्ग को बहुत क्षति हुई, पर आचार्य देव जिन किसानों घनश्याम मीणा एवं कजोड़ मीणा के ट्यूबवेल पर बने कमरों पर रुके थे, उनकी फसल को आँच भी नहीं आई। आसपास के कई खेत भी बच गये। वे दोनों किसान तो उसे बाबा का चमत्कार मानकर श्रद्धा से अभिभूत हो गये। वे मेरे फूफाजी को आकर बोले कि-"थां का म्हाराज सूं जार जरूर कीजो कि म्हैं तो निहाल हो ग्या, म्हाको ढोक जरूर दिजो, वां का पांव पड़बा सूं म्हे तो धन्य हो ग्या।" (आपके महाराज से जाकर अवश्य कहना कि हम तो निहाल हो गए, हमारा वन्दन जरूर कहना, उनके यहाँ चरण पड़ने से हम तो धन्य हो गए।) फिर बुआजी ने आकर हम सबको बताया। हमारे मन में भी धर्म गुरु के प्रति श्रद्धा में अभिवृद्धि हो गई। ऐसा ही एक बार जयपुर में दांत के रूट कैनाल चिकित्सा के समय हुआ था।

-ग्राम-कुश्तला, सवाईमाधोपुर (राज.)

नैतिकता

ईमानदारी आज भी जीवित है

श्री आर. प्रसन्नचन्द चोरड़िया

हमें अपने पुराने जमाने के गाँवों की याद आती है। उस समय के लोग अपने मालिक के प्रति कितने वफादार होते थे। कितने ईमानदार होते थे। मेरे ननिहाल चौकड़ी में गाड़ी चलाने वाले हाँगड़ी रहते थे। दोनों भाट जाति के थे। उनका काम ऊन तोलना, बैलगाड़ी में चढ़ाना फिर वहाँ से ब्यावर ले जाना होता था। मजबूत कद-काठी के धनी थे। घर-दुकान का काम भी करते रहते थे। घर में खाने-पीने की खुली छूट थी। सर्दियों में बाजरी का सोगरा-तिल्ली का तेल, कड़कड़ खाँड का चूरमा बनाकर खाया करते थे। वह तेल 12 माह उनके शरीर की नाड़ियों को मुलायम रखता था। उस समय हाँगड़ियों (गाड़ीवान) को हर जगह इसी तरह रखा जाता था। तभी वे 12 मास रात-दिन ईमानदारी से मालिक की सेवा करते रहते थे, रक्षा करते थे।

इसी तरह हमारे गाँव में भी भैरोजी मुण्डेल घर की रखवाली करते थे। उनके रहते क्या मजाल लकड़ी का टुकड़ा भी कोई ले जाय। इस तरह अपने स्वार्थों का त्याग करने वाले ईमानदार लोग हमारे घरों की, हमारे परिवार की हिफाजत करते थे।

हमने देखा है पुराने जमाने में बंगाल में, बम्बई इत्यादि अनेक बड़े शहरों में सारा व्यापार, प्रतिष्ठान, मुकाम, दुकानें मुनीमों के भरोसे चला करती थी। उन पर मालिक का इतना विश्वास, इतना भरोसा था कि अगर हम कल्पना भी करते हैं तो उसकी ठंडक मन को हरा कर जाती है। भरोसा स्वर्ग के समान लगता है। लेकिन आजकल गाँवों में हर कोई होशियार बना फिरता है। हमारे घर के सामान से 2-4 चीजें एक-एक कर कम करना फिर कहानी बनाना, इत्यादि नये-नये प्रयोग करने वाले बहुत लोग मिल जायेंगे।

हमें इस बात पर अचम्भा है कि गाँवों के सीधे-साधे लोग जहाँ ईमानदारी, वफादारी, सच्चाई बसती थी, अब वहाँ बात-बात में झूठ बोलने की, बेईमानी की, धोखाधड़ी करने की नीयत बसने लगी है। इसे हम क्या कहें- हमारी स्कूलों में नैतिक शिक्षा की कमी, परिवार के कमजोर संस्कार या स्वार्थ की अधिकता है। अब यहाँ हर कदम सावधान होकर उठाने के बावजूद धोखा मिलता है।

फिर भी कभी-कभी हम समाचार-पत्रों में पढ़ते हैं कि किसी ऑटो रिक्शा चालक ने, टैक्सी चालक ने, बस के कन्डक्टर ने अपनी गाड़ी में रखे गहनों के बण्डल, नोटों से भरे हुए थैले उनके मालिक तक पहुँचाए हैं। जो अपनी मेहनत मजदूरी से संतुष्ट हैं वे दूसरों की सम्पत्ति को उठाकर लाने में, उपयोग करने में पाप समझते हैं।

इस धरती पर ऐसे-ऐसे निस्वार्थी, निर्मल मन वाले व्यक्ति भी मिल जायेंगे जो किसी देवता से कम नहीं होते। उन्हीं सज्जनरूपी देवताओं के कारण आज सारा जहान रोशन है। ईमानदारी शब्द जीवित है।

-52, कालाथी पिल्लै स्ट्रीट, चेन्नई-600079 (तमिलनाडु)

शिविर के अनुभव

Experience in Chennai Vitaraga Dhyana Sadhana Shivir

It was our good fortune that we got to attend 10 day Vitaraga Dhyana Sadhana Shivir from 7th to 17th January 2014 at Red Hills, Chennai. Mr. Narendra Surana and Miss Neha Choradia were the chief instructors and guide for the camp who guided us well through the 10 day program. We were seven students from the Department of Jainology, University of Madras besides 20 others. It was a wonderful experience and we thank our Professor and Head Dr. Priyadarshana Jain who inspired and motivated us to undergo this training for realizing and purifying our inner self. We are at present studying 25-28 papers related to different aspects of Jainism for our M.A. Jaina Studies Course at the University of Madras. One of the papers in this program is Jaina Yoga and Sadhana where we learn about Dhyana and Sadhana in great detail. We got a lot of insight into the deep philosophy and spirituality of Jainism while studying this paper and so really benefitted from this meditation camp. Attending this camp was the practical aspect of the theory papers we are studying in the Department.

We have no words to tell how fulfilling and illuminating the meditation experience was! Firstly it was conducted in a serene atmosphere by ardent instructors. The techniques applied were simple, sincere and down to earth. The bliss of bheda-vijnana, the joy of going beyond ragadvesha, the happiness of being disconnected with all that is non-self, and being in a state of sublime silence and the inner peace experienced through practical dhyana and samyika, cannot be put in words. It was coming unto our inner self, our eternal home, living amidst the hustle and bustle of life.

- **Prakash Kankaria, Ashok Gelada, Kusum Kumari, Vinitha, Pavithra K Jain, Abilasha S, Pavan Kumar** (Of these 7 Students one of them Mrs. Kusum Kumari is working on the Significance of Vitaraga Dhyana Sadhana Shivir for M.A. dissertation)

गीत

धार्मिक पाठशाला गीत

श्री जितेन्द्र जैन 'प्रेक्षक'

(तर्ज:- व्हाई दिस कोलावेरी.........।)

धार्मिक पाठशाला रोज ही हम जायें-4
हम सामायिक प्रतिदिन करके, स्व समभावों को जगायें।
दें अज्ञान को रोज चुनौती, ज्ञान नित नया पाएँ।।
धार्मिक पाठशाला रोज ही हम जायें-4

पुनरावर्तन करते रहें हम, करके स्पष्ट उच्चारण।
गुरुजनों को रोज सुनाएँ, नया है जो ज्ञानार्जन।।
धार्मिक पाठशाला रोज ही हम जायें-4

भय्या आये..दीदी आयी...मित्रों को भी लायें,
संस्कारों की ज्योति से निज.. जीवन को चमकायें।
सद्गुणों की सुवास से निज, चारित्र महकायें।।
धार्मिक पाठशाला रोज ही हम जायें-4

हर्षोल्लास....
हर्षोल्लास से अभ्यास...होवे अनुशासन का....,
लक्ष्य हो... धर्म के... शुद्ध परिपालन का....,
नियम व्रतों ... से नित्य ही.... जीवन का शृंगार हो.....
और आत्मा... से कर्म की... रज का परिष्कार हो....,
मन सरल रखकर बन जायें, सच्चे अविकारी,
धर्माराधन से बन जायें, मोक्ष के अधिकारी.....।
धार्मिक पाठशाला रोज ही हम जायें-4

-'वर्द्धमान', 153-ए, काशीपुरी, भीलवाड़ा-311001 (राज.)

कविता

जीवन-बोध क्षणिकाएँ

श्री यशवन्तमुनिजी

अनमोल

पहले तोल, फिर बोल,
वचन निकलेंगे तेरे अनमोल।

त्याज्य

छूटने वाला जिस क्षण
छोड़ने योग्य अन्तर से लग जाएगा,
उस क्षण जीव विभ्रम
निवार जीवन को संवार पाएगा।

सुनिए

मन तो बेलगाम
भागता है विषयों की ओर,
संवेदनशील चेतन कहता है
पकड़ इसकी डोर,
वरना यह कामी मन तो लेगा
आत्मा के शान्ति धन को चोर,
आत्मा ओर परमात्मा की इस बात
को सुन तूं कर इस पर शीघ्र गौर।

पंचम गति

अगर करना चाहता है
आत्मा की अनुभूति,
तो कर पहले निजात्मा से प्रीति,
तब ही होगी आत्मा की प्रतीति,
और उससे ही बनेगी सम्यक् मति,
हाँ! इसी रीति से मिलेगी पंचम गति।

योग

भगवान को मात्र हाथ ही नहीं जोड़ें,
उनसे अपना अन्तर हृदय भी जोड़ें,
मन को संसार से मोड़ें,
फिर देखें हमारी चेतना कैसे
मुक्त गगन की ओर न दौड़े।

निस्तरंग

जल के तल में पड़ी वस्तु को
निहारने के लिए जल का
निस्तरंग होना आवश्यक है,
वैसे ही चेतन के तल में रही
शान्ति की अनुभूति के लिए
हमारे मन का निस्तरंग
होना आवश्यक है।

रहस्य

मैं (आत्मा) यह (पुद्गलमय) नहीं हूँ,
वह (परमात्ममय) हूँ,
इतना रहस्य समझ में आ जावे तो
जीव संसार में रह नहीं सकता।

विरक्ति

जब जग जान ही लिया है
तो जाग, और छोड़
जड़ का राग।

-संकलित

युवा-स्तम्भ

हे जीव! क्षण भर भी प्रमाद मत कर

श्री दुलीचन्द जैन 'साहित्यरत्न'

जैन धर्म में उत्तराध्ययन सूत्र का विशेष महत्त्व है। इसमें भगवान् महावीर की अंतिम देशना उपलब्ध है। जिस प्रकार उपनिषदों का सार गीता में संगृहीत है, बुद्धवाणी का सार धम्मपद में संगृहीत है, उसी प्रकार भगवान् महावीर की समग्र वाणी का सार उत्तराध्ययन सूत्र में उपलब्ध है। इसमें धर्मकथाएँ हैं, दर्शनशास्त्र है, तत्त्वज्ञान है, अध्यात्म है तथा नैतिक एवं व्यावहारिक जीवन का भी गहराई से चिंतन है। भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह सरल, सुबोध और तलस्पर्शी है।

उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्ययन का शीर्षक है- 'द्रुमपत्रक'। इसमें भगवान् महावीर द्वारा गौतम को दिया हुआ उद्‌बोधन संकलित है। इस सूत्र में जीवन की अस्थिरता, क्षणभंगुरता, नश्वरता, मानव मन की दुर्लभता एवं शरीर तथा इन्द्रियों की क्रमशः क्षीणता की शिक्षा दी गई है। शुरु में ही वृक्ष के पीले और जर्जरित पत्ते को डाली से गिरते देख कर भगवान् महावीर ने गौतम गणधर को, जो उनके प्रधान शिष्य थे, जीवन की क्षणभंगुरता एवं अप्रमत्तता का सारगर्भित उपदेश दिया। इस अध्ययन में मात्र 37 गाथाएँ हैं, उनमें से 36 गाथाओं में लिखा है-'**समयं गोयम मा पमायए।**'

अर्थात् हे गौतम! तुम क्षण भर भी प्रमाद मत करो। प्रश्न उठता है कि भगवान् महावीर ने 36 बार 'क्षण भर भी प्रमाद मत करो' ऐसा क्यों कहा? संघ में सैकड़ों नवदीक्षित तथा गौतम के पश्चात् दीक्षित साधुओं को सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होते देख गौतम का मन अधीर हो उठा था, अतः भगवान ने उन्हें ही सुस्थित करने के लिए यह संबोधन विशेष रूप से दिया होगा। भगवान ने कहा-"हे गौतम! तुम शंका मत करो। तुम भी मेरी तरह एक दिन अवश्य सर्वज्ञ बनोगे। अभी मेरी उपस्थिति है, मैं तुम्हें मार्गदर्शक के रूप में प्राप्त हूँ। अतः तनिक भी अधीर हुए बिना तुम पूर्ण दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते रहो। तुमने संसार-सागर पार कर लिया है, अब तो केवल किनारे का छिछला जल ही शेष है। तट पर आते क्यों रुक गये हो? "त्वरित आगे बढ़ो। क्षण भर भी प्रमाद मत करो।"

दूसरा कारण है जैन आगम अधिकतर गौतम की जिज्ञासाओं एवं महावीर के समाधान से भरा है। हो सकता है, गौतम ने दूसरे साधकों के लिए कुछ प्रश्न पूछे हों। इसका अर्थ है- संबोधन केवल गौतम का है, परन्तु प्रतिबोध सबके लिए है।

प्रमाद का अर्थ होता है- धर्म के प्रति अनुत्साह। इस सूत्र के सभी पद जीवन में

उत्साह, साहस एवं जागृति भरने वाले हैं। नमूने के तौर पर कुछ सूत्रों का अर्थ नीचे दिया जा रहा है-

- जिस प्रकार समय बीतने पर वृक्ष के पत्ते पीले पड़ते हुए पृथ्वी पर झड़ जाते हैं, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।
-उत्तराध्ययन सूत्र 10.1
- जैसे कुश की नोंक पर लटका हुआ ओस-बिन्दु कुछ ही समय के लिए टिकता है, मनुष्य जीवन भी वैसा ही अस्थिर है। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर। *-उत्तराध्ययन सूत्र, 10.2*
- निश्चय ही मनुष्य-भव में जन्म पाना बहुत दुर्लभ है। सभी प्राणियों को यह बड़े दीर्घकाल के बाद प्राप्त होता है। कर्मों के फल बड़े तीव्र होते हैं। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर। *-उत्तराध्ययन सूत्र, 10.4*
- जैसे कमल शरद ऋतु के निर्मल जल से भी निर्लिप्त रहता है, वैसे ही तू अपनी सारी आसक्तियों को छोड़, सारे स्नेह बंधनों को तोड़ डाल। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर। *-उत्तराध्ययन सूत्र 10.28*
- विशाल सागर को तू तिर चुका है। अब तट के निकट आकर क्यों खड़ा है? पार पहुँचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।
-उत्तराध्ययन सूत्र 10.34
- तेरा शरीर जीर्ण होता जा रहा है, केश पक कर सफेद हो चले हैं। शरीर का सब बल क्षीण होता जा रहा है। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर।
-उत्तराध्ययन सूत्र 10.26
- तू गाँव या नगर में संयत, बुद्ध और उपशान्त होकर विचरण कर, शान्ति-मार्ग पर बढ़। हे गौतम! (जीव) क्षण भर का भी प्रमाद मत कर। *-उत्तराध्ययन सूत्र 10.36*

इस प्रकार इस सूत्र में अप्रमाद की प्रेरणा दी गई है। यह आत्म-जागृति का संदेश देता है। अन्य सभी अध्ययनों में भी इस प्रकार के उपदेश दिये हुए हैं।

-70, टी.टी.के. रोड़, अलावरपेठ, चेन्नई-600018 (तमिलनाडु)

अध्यात्म

गतमोहाधिकाराणामात्मानमधिकृत्य या।
प्रवर्तते क्रिया शुद्धा तदध्यात्मं जगुर्जिनाः।।

-अध्यात्मसार, 26

विवेचन- मोह की प्रबलता के न रहने पर आत्मा को विषय करके जो शुद्ध क्रिया की जाती है, उसे जिनेश्वरों ने 'अध्यात्म' कहा है।

अभिव्यक्ति

अगम चेतना की घाटी

श्रीमती अभिलाषा हीरावत

है अगम चेतना की घाटी कमजोर बड़ा मानव मन
सुख-दुःख की व्याकुलता से धधक रहे वन के वन
संकल्प विकल्प के शोर में लक्ष्य से नहीं होता मिलन
संशय के सूक्ष्म कुहासों में विश्वास का नहीं होता रमण
ध्यान की शीतल छाया में हर दुःख का होता स्व तर्पण
चेतना के तल पर करें अंतर की प्रलय को अर्पण
अवलोकन कर ध्यान से जाने कैसे बीता अब तक जीवन
मन हमारे वश में था या हम लिए थे उस की शरण
चित्त धारा एक लड़ी है क्रम तो है अनवच्छिन्न
पंख कतरे विहग विहारों के दूर करें समग्र भटकन
शाश्वत नहीं मही पर पुद्गल कोई, सम्पूर्ण जगत में है संघर्षण
उत्पाद व्यय, उत्थान पतन से व्यापक है वसुधा का कण-कण
सजगता की धरा पर जो जाग सका वह है चेतन
चेतना के बल पर अनित्य बोध में करना है गमन
अणु-अणु भंगुर नश्वर अनित्य हर संवेदन
भिन्न-भिन्न है वेदन, समता से करें इनका अभिनन्दन
परम सत्य के दर्शन से खुल जाएंगे मुँदे नयन
स्व दर्शन से होगा नव आत्म आलोक का प्रसरण
राग द्वेष अभिमान को त्यागें, सुख शय्या का हो वर्जन
शुद्ध सात्त्विक आहार करें, उभयकाल हो प्रतिक्रमण
शील सदाचार निर्मल पालें, आर्य मौन से बढ़े हर चरण
अग्नि में तप कर ही सोना बनता है शुद्ध कुन्दन
इस विधि की रीत यही, सहता है तन, सजग बनता है मन
तन-मन से रम जाएँ ध्यान में, हो श्रद्धा संग पूर्ण समर्पण।

-मुम्बई (महा.)

अभिव्यक्ति

मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' की विशेषताएँ

श्री सुरेशचन्द्र धींग

जैन पत्र-पत्रिकाओं में जिनवाणी पत्रिका का विशिष्ट स्थान है। यह स्थान और सम्मान जिनवाणी की निम्नांकित अनेक विशेषताओं के कारण है। जैसे-

1. जिनवाणी का सम्पादन पदाधिकारियों के हाथ में नहीं है, अपितु श्रुतसाहित्य के लिए समर्पित सुलझे हुए मनीषियों के हाथ में है। इससे साहित्यिक स्वायत्तता और निष्पक्षता के साथ श्रेष्ठ रचनाओं का चयन होता है। यह व्यवस्था पत्रकारिता और पाठकों के लिए बहुत अच्छी है।
2. जिनवाणी में सभी वर्गों और श्रेणियों के पाठकों के लिए सामग्री रहती है।
3. सम्प्रदाय-मुक्त, खण्डन-मुक्त रीति-नीति।
4. धर्म और समाज में व्याप्त विसंगतियों का स्वस्थ, सकारात्मक और वस्तुनिष्ठ प्रतिकार।
5. जैन समाज की प्रायः सभी प्रमुख या बड़ी खबरों तथा प्रेरक गतिविधियों को जिनवाणी में स्थान मिलता है।
6. जिनवाणी के अनेक विशेषांक प्रकाशित और चर्चित हुए। प्रामाणिक सन्दर्भों के रूप में उनका, उनके लेखों/रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। सामान्य अंक भी सन्दर्भित किये जाते हैं।
7. 'नूतन-साहित्य' स्तंभ के माध्यम से नये प्रकाशनों की समीक्षात्मक जानकारी दी जाती है।
8. जिनवाणी अपने लेखकों का मूल्यांकन सम्प्रदाय का चश्मा लगाकर नहीं करती है। इसमें नवोदित और स्थापित, सभी प्रकार के लेखकों, कवियों और रचनाकारों को स्थान मिलता है।
9. जिनवाणी लेखकों को पारिश्रमिक देती है। पिछले कुछ वर्षों में लेखकों के लिए श्रेष्ठ रचना पुरस्कार भी घोषित किये गए। इसमें लेखकों को प्रोत्साहन के साथ पाठकों को उत्तम और मौलिक सामग्री देने की प्रतिबद्धता भी प्रकट होती है।
10. युवा, महिला और बाल-किशोर वर्ग के लिए विशेष स्तंभ हैं। बाल-स्तंभ के माध्यम से प्रतिमाह प्रतियोगिता आयोजित होती है और विजेता बालक-बालिकाओं को नकद पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं।

11. स्वास्थ्य से सम्बन्धित लेखों के माध्यम से वैकल्पिक, प्राकृतिक और अहिंसक चिकित्सा प्रणालियों/विधियों की जानकारी दी जाती है। पिछले कुछ समय से स्वास्थ्य आलेख पर भी प्रतियोगिता हो रही है।

इनमें से कुछ विशेषताएँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं के लिए प्रेरणास्पद हो सकती है। जिनशासन को सुदृढ़ बनाने एवं विस्तार करने में पत्र-पत्रिकाओं का बहुत योगदान हो सकता है, बशर्ते कि पत्र-पत्रिकाएँ अपना दायित्व पूर्ण निष्ठा से निभाएँ।

-बम्बोरा-313706, उदयपुर (राज.)

शुभ चिन्तन में लगा रहे मन

श्री मोहन कोठारी 'विनर'

शुभ चिंतन में लगा रहे मन, आओ हम अभ्यास करें,
दुश्चिंतन का वेग उठे तब, मन को अपने शांत करें।
शुभ चिंतन में लगा रहे मन.....।। टेर।।
शुभ विचार मन में आने से, मन स्वस्थ हो जाता है,
मन के स्वस्थ हो जाने से फिर, तन स्वस्थ हो जाता है।
नित उठ करके हम सब बंधु, जिनवाणी रस पान करें,
शुभ चिंतन में लगा रहे मन.....।।1।।
दुश्चिंतन से दूर रहें हम, गर हम अपना शुभ चाहें,
बुरी भावना आए न मन में, मन को अपने समझाएँ,
आओ हम सब मिल कर अपने, मन की संभाल करें,
शुभ चिंतन में लगा रहे मन.....।।2।।
मन मलिन हो जाता है तब, राहें कठिन हो जाती हैं,
संकल्पों और विकल्पों में, शांति समाधि जाती है।
बुरे विचारों से बचने का, आओ हम प्रयास करें,
शुभ चिंतन में लगा रहे मन.....।।3।।
निर्मल अपनी रहे भावना, मैत्री भावना सबसे हो,
सब जीवों का शुभ चाहें हम, सभी सुखी इस जग में हों।
दुर्बुद्धि और दुश्चिंतन का, आओ हम सब त्याग करें,
शुभ चिंतन में लगा रहे मन.....।।4।।

-जनता साड़ी सेण्टर, स्टेशन रोड़, दुर्ग-491001 (छतीसगढ़)

अभिव्यक्ति

वीतराग-ध्यान की आराधना

श्रीमती सुनीता नरेन्द्र डागा

उट्ठिए नो पमायए, फरमा रहे अप्रमत्त अणगार
जागृति की मिली साधना, करना है जब आत्म शृंगार
बहुत सजाया इस देह को, नाच नचाया इस पुद्गल को
युगों-युगों से सुनते आये, नश्वर है ये काया,
आज स्वानुभूति से जाना, इमं सरीरं अणिच्चं
इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइं संभवं (उत्तरा. 19/12)
"चरैवेति चरैवेति" कर ले हम आराधना
अहा कितनी सुन्दर है, वीतराग ध्यान की आराधना।।1।।
आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं
सुकुमारता त्याग हे जीव, ले-ले जरा तू आतापना
कामना ही दुःख का मूल, तज असत् का संग सत् में आना
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए (दशवै. 2/5)
छेदन कर द्वेष का, विरत हो राग से, अव्याबाध सुख को है पाना
देहाभिमान का त्याग कर, हे जीव आगे बढ़ते जाना
"चरैवेति-चरैवेति", कर लें हम आराधना
अहा कितनी सुन्दर है, वीतराग की आराधना।।2।।
गुलाम भारत की आजादी हित, लगा था यह नारा,
अंग्रेजो भारत छोड़ो, गूँज रहा भारत छोड़ो आन्दोलन,
हर सेनानी की एक आवाज, अंग्रेजो भारत छोड़ो,
आ गये हम क्रान्तिवीर, लगा रहे स्वाधीनता का नारा
आज मचा है इस जीव के, भीतर में भी एक आंदोलन,
पुद्गलों आत्मप्रदेश छोड़ो, लगा रहे आत्मानंदी नारा
"चरैवति-चरैवेति" चलते जाना, कर ले हम साधना।
अहा कितनी सुन्दर है, वीतराग ध्यान की आराधना।।3।।

(19 से 30 दिसम्बर 2013 को जयपुर में आयोजित वीतराग ध्यान-शिविर पर काव्याभिव्यक्ति)

-बोरिवली (पश्चिम), मुम्बई (महा.)

जयन्ती

रहेगा अमर तुम्हारा दान

श्री अरिहन्त चौपड़ा

युग के महादानी! रहेगा अमर तुम्हारा दान
चिर ऋणी संसार रहेगा पाकर तेरा ज्ञान,
'तीर्थंकर महावीर' के प्रति जनमानस में अतिसम्मान,
जन-जन के प्रतिपालक बनकर तुमने जो उपकार किया है
जन-जन के लिए आगम-वाणी से तुमने जो सार दिया है
आधार बनेगा जीवन का यह करने को उत्थान।
कला विज्ञ जीवन के हित तुमने क्या-क्या निर्माण किया,
कला वही है जिसने क्षण-क्षण जन मानस को त्राण दिया,
अहिंसा के अवतार बनकर किया बहुत संधान,
एक-एक है वाक्य तुम्हारा अटल और अनमोल,
सहज सरलता झलक रही देखें आँखें जो खोल।
कहना करना तुल्य रहा है नहीं कपट व्यवधान।।
स्तुति सुन उत्कर्षित नहीं होते, नहीं भूलते मर्यादा,
महाप्रभु 'महावीर' का था जीवन कितना सीधा सादा,
क्या कहकर मैं बतलाऊँ तुमको ओ युग के भगवान्!
'जीओ और जीने' दो का नारा दिया तुमने जग में
कर दिया न्यौछावर जीवन तुमने अपना संयम मग में
प्रथम स्वयं आचरण किया, फिर दिया विश्व पर ध्यान।।
शान्ति का सुन्दर सुपथ, तुमने अद्भुत प्रशस्त किया,
चलकर चलना बतलाया था, चलने वाले से प्यार किया,
इसीलिए तुम बने चौबीसवें तीर्थंकर दिया विश्व को विशद ज्ञान।
सत्य गवेषक अन्वेषक! तेरा अनुप्रमाणित जीवन था,
एकाचार विचार एक औ ऐक्य परम जीवन धन था,
श्रद्धांजलि में स्वयं समर्पित हैं 'अरिहन्त' के तन मन प्राण।।

-5-डी-11, न्यू हाउसिंग बोर्ड, पाली (राज.)

स्वास्थ्य-विज्ञान

भोजन और स्वास्थ्य

डॉ. चंचलमल चोरड़िया

भोजन हेतु समग्र दृष्टिकोण आवश्यक

शरीर को चलाने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन की शरीर के सभी अवयवों के निर्माण में अहं भूमिका होती है। इससे शरीर को ताकत मिलती है। अतः भोजन के बारे में काफी शोध हो रही है। अधिकांश आहार विशेषज्ञों ने शरीर को शक्तिशाली बनाने हेतु प्रोटीन, विटामिन, कार्बोज, लवण, जल, वसा और केलोरीज की मात्रा को तो अत्यधिक महत्त्व दिया। किसी खाद्य पदार्थ में क्या-क्या तत्त्व कितनी-कितनी मात्रा में होते हैं, उनकी जानकारी से जन साधारण को अवगत कराया। परन्तु भोजन के अवयव कितने सात्त्विक, अहिंसक, शुद्ध और पवित्र होने चाहिये, इस संबंध में अपेक्षित प्राथमिकता नहीं दी। परिणाम स्वरूप पौष्टिकता के नाम पर आज भक्ष्य-अभक्ष्य, खाद्य-अखाद्य, करणीय-अकरणीय, अहिंसा-हिंसा, न्याय-अन्याय, वर्जित-अवर्जित आदि का विवेक मानव खोता जा रहा है।

अधिकांश आहार गोष्ठियों में भोजन के पौष्टिक तत्त्वों एवं केलोरीज के बारे में चर्चा और चिन्तन प्रायः सीमित होता है। भोजन से जीवन क्यों, कितना और कैसे प्रभावित होता है? यह प्रायः गौण रहता है। यदि आपको कोई अपने घर भोजन के लिये आमंत्रित करे, अच्छे से अच्छा भोजन बनाए, परन्तु भोजन खिलाते समय आप पर व्यंग करे, तो भोजन में उपलब्ध पौष्टिक तत्त्व क्यों प्रभावहीन हो जाते हैं? चिन्तन की आवश्यकता है।

भोजन कब, क्यों, कितना, कैसा और कहाँ करना चाहिए तथा कब, क्यों, कैसा और कहाँ नहीं करना चाहिये? भोजन कहाँ और कैसे वातावरण और बर्तनों में बनाना चाहिये और खिलाना चाहिए? दो भोजन के बीच में कितने समय का कम से कम अन्तराल होना चाहिये? थोड़ा-थोड़ा अथवा बार-बार क्यों नहीं खाना चाहिए? प्रकृति के अनुरूप भोजन का सर्वश्रेष्ठ अनुकूल समय कौन सा होता है? रात्रि भोजन क्यों नहीं करना चाहिए? भोजन करते समय आसपास का वातावरण, हमारी भूख, आसन, विचार, भावना, मानसिकता कैसी है? भोजन मौसम और शारीरिक अवस्था के अनुकूल है अथवा नहीं? उसमें क्या-क्या कितने-कितने उपयोगी अथवा अनुपयोगी पदार्थ हैं? जिस उद्देश्य से भोजन किया जा रहा है, उसका कितना प्रतिशत लाभ मिल रहा है? अगर नहीं मिल रहा है,

तो क्यों नहीं मिल रहा है? भोजन को प्रभावित करने वाले ऐसे अनेक परमावश्यक तथ्य आहार विशेषज्ञों की चर्चा, चिन्तन और अभिव्यक्ति में प्रायः गौण रहते हैं। रोगी को भोजन संबंधी परामर्श देते समय ये तथ्य प्रायः उपेक्षित रहते हैं, जिनका महत्त्व पौष्टिकता से भी अधिक होता है। जिस प्रकार विष की चंद बूंदें टनों दूध को अपेय बना देती है। एक चिनगारी सारे घास के ढ़ेर को जलाने की क्षमता रखती है। एक सांप के काटने से व्यक्ति मर सकता है। ठीक उसी प्रकार भोजन में उपरोक्त तथ्यों में से किसी भी तथ्य की उपेक्षा भोजन से होने वाले लाभ से वंचित रख सकती है।

भारत के नागरिकों का खान-पान, मौसम की विविधता, विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियाँ, पारिवारिक और सामाजिक संरचना में अनेकता तथा रीति-रिवाजों, त्यौहारों, अलग-अलग उपासना पद्धतियों का समन्वय होने से एक जैसा भोजन संभव नहीं होता। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति में प्रायः इतना बदलाव नहीं होता। हमारी दिनचर्या और जीवन शैली विदेशियों से मेल नहीं खाती। अतः भोजन में उनका अन्धानुकरण स्वास्थ्य के सदैव अनुकूल हो, आवश्यक नहीं।

जिस वातावरण और स्थान पर हम रहते हैं, हमारे लिये आवश्यक सभी खाद्य पदार्थों का उत्पादन प्रकृति उस क्षेत्र में करती है। सभी जीव जन्तु वही खाते हैं, जो उनके आसपास उपलब्ध होता है। वे कोई खाद्य पदार्थों का अन्य स्थानों से आयात नहीं करते। अतः जिस मौसम में जो फल, सब्जियाँ और अन्य खाद्य पदार्थ सहज और सरलता से भरपूर मात्रा में उपलब्ध हों, वे सारे पदार्थ प्रायः स्वास्थ्य के अनुकूल होते हैं। प्रकृति के नियम और कानून गरीब और अमीर सबके लिये समान होते हैं। अतः महंगे, बेमौसमी, आयातित खाद्यान्न का सेवन स्वास्थ्य के लिये सदैव उपयोगी हो, पूर्णतः मिथ्याधारणा है।

जो भोजन सहज रूप से उपलब्ध होता है, उसे शांत भाव से ग्रहण करना चाहिये। भोजन में पौष्टिक तत्त्वों एवं केलोरीज की आवश्यक मात्रा, जितनी ऊर्जा नहीं देती, उससे ज्यादा मानसिक तनाव, भय और चिन्ता के कारण ऊर्जा का अपव्यय हो जाता है, जो घाटे का सौदा होता है। अधिकांश व्यक्तियों को सावधानी रखते हुए भी वही भोजन लेना पड़ता है जो घर में बनता है। घर में प्रत्येक परिजन के आवश्यकतानुसार प्रायः भोजन नहीं बनता। अतः भोजन करते समय भोजन के अवयवों के बारे में व्यर्थ चिन्तन एवं चिन्ता नहीं करना चाहिये। जिससे व्यर्थ में तनाव और चिन्ता होती है। जो भोजन में उपलब्ध पौष्टिक तत्त्वों की कमी से ज्यादा हानिकारक होती है। अतः उपलब्ध भोजन को शांत भाव से ग्रहण करना अधिक लाभप्रद होता है।

भोजन में प्राथमिकता क्या हो?

भोजन के संबंध में हमारी प्राथमिकताएँ क्या हों? क्या कभी हमने मनोबल और आत्मबल की क्षमताओं को जानने, समझने तथा अनुभव करने का प्रयास किया? भोजन न केवल शरीर को ताकत देता है, अपितु हमारे विचारों, भावनाओं, चिन्तन तथा जीवन शैली को भी प्रभावित करता है। जिस प्रकार बिना कपड़े आभूषण से शरीर को सजाने वालों पर दुनिया हँसती हैं। ठीक उसी प्रकार पौष्टिकता और स्वाद के नाम पर मन और आत्मा को विकारी और कमजोर बनाने वाला, हिंसा अथवा हिंसक पदार्थो से बना भोजन करना अदूरदर्शिता पूर्ण आचरण ही होता है।

भोजन का पूर्ण चयापचय (Metabolism) आवश्यक

भोजन जितना महत्वपूर्ण नहीं, उतना उसका सही पाचन जरूरी होता है। भोजन के पाचन से सर्व प्रथम उसका रस बनता है। उसके पश्चात् रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी और अंत में वीर्य बनता है। वीर्य का निर्माण चयापचय की सम्पूर्ण क्रिया होने पर ही संभव है। जिस भोजन से मात्र रक्त, चर्बी एवं हड्डियों आदि के अवयव बनते हों, वीर्य नहीं बनता हो, उस भोजन की पाचन क्रिया को पूर्ण एवं संतुलित नहीं कहा जा सकता। साथ ही हमें असंयम पूर्ण जीवन जीते हुए अपने वीर्य का यथा संभव अपव्यय और दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। वीर्य का नाश कमजोरी और रोगों का आमन्त्रण है तथा वीर्य की रक्षा स्वस्थ जीवन का राजमार्ग। आप स्वयं चिन्तन करें कि आपकी प्राथमिकता क्या है?

आजकल अधिकांश व्यक्ति प्रायः भोजन शरीर की आवश्यकतानुसार नहीं करते, अपितु मजबूरी और स्वाद की प्राथमिकता के अनुसार करते हैं। भोजन से न केवल स्वाद, अपितु शक्ति भी मिलनी चाहिए। हमें जीने के लिये भोजन करना चाहिये। परन्तु आजकल प्रायः हम भोजन के लिये जीते हैं, ऐसा समझा जाए तो आश्चर्य नहीं। गंदी से गंदी वस्तुओं को खाते समय छान बीन नहीं करते। मात्र उस पर डाली गई सुगन्ध, आकर्षक पेकिंग, मन लुभावने भ्रामक विज्ञापनों से भ्रमित हो स्वाद की लोलुपता के कारण स्वविवेक न होने से ग्रहण करते तनिक भी संकोच नहीं करते। पाचन हो या न हो, खाना एक रिवाज बन गया है।

आज दुनिया में 80 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति खाने का विवेक न होने अथवा ज्यादा खाने से बीमार होते हैं। इसीलिये तो कहा गया है कि "More Dishes More Diseases" अर्थात् ''जितना ज्यादा खाना उतने ज्यादा रोग।'' हमारे यहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है- **''एक समय खाने वाला योगी, दो समय खाने वाला भोगी, तीन समय खाने वाला रोगी एवं उससे ज्यादा खाने वाला महा रोगी।''** हम स्वयं आत्म-निरीक्षण करें कि हम कौनसी श्रेणी में हैं। इसी कारण बाह्य रूप से भले ही हम अपने आपको

स्वस्थ समझें, हमारे शरीर में परोक्ष रूप से सैकड़ों रोग होते हैं।

हम भलीभांति जानते हैं कि फुटबाल अथवा हाकी की टीम मैच तभी जीत सकती हैं, जब आगे के खिलाड़ी अधिक मजबूत, सजग, सक्रिय हों, ताकि गोलरक्षक तक फुटबाल कम से कम पहुँचे। ठीक उसी प्रकार यदि हम दांतों का कार्य आमाशय से करवाते हैं, तो आमाशय को भोजन पचाने के लिए अधिक श्रम करना पड़ता है, अधिक पाचक रसों की आवश्यकता होती है। परन्तु शरीर सीमित मात्रा में ही पाचक रस भेजता है। परिणामस्वरूप पाचन बिगड़ने लगता है। अत: स्वास्थ्य प्रेमियों को दांतों का कार्य दांतों से ही करना चाहिए न कि आमाशय से। अर्थात् भोजन को पूर्ण चबा-चबा कर ही खाना चाहिए।

बार-बार भोजन करना हानिकारक-

हमारे ऋषि मुनियों ने एकाशन करने की जो बात कही, उसके पीछे यही उद्देश्य था कि मुँह में जब चाहे कुछ न डाला जाये। जो कुछ खाना हो एक या दो बार ही खाया जाये। ताकि हमारे आमाशय को बाकी समय पूर्ण आराम मिल जाये। जब हम कोई भी पदार्थ मुंह में डालते हैं, चाहे उसकी मात्रा बहुत कम ही क्यों न हो, सारी पाचन व्यवस्था को सजग और सक्रिय होकर कार्य करना पड़ता है। जिस प्रकार किसी रेलवे फाटक पर कार्यरत चौकीदार को चाहे अकेला इंजिन उधर से निकले अथवा राजधानी एक्सप्रेस, फाटक बंद करने की प्रक्रिया में कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी बस में चाहे एक यात्री हो अथवा पूरी बस भरी हो, बस चालक को कोई अन्तर नहीं पड़ता। पेट्रोल की खपत में भी बहुत ज्यादा अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार जितनी अधिक बार मुंह में कुछ भी डाला जायेगा उतना पाचन अंगों को अधिक कार्य करना पड़ेगा। परिणामस्वरूप जब हमारा मुख्य भोजन होगा तब वे अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं कर पाते। समय पर अच्छी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। भोजन के समय की नियमितता नहीं रहती। इसी कारण आज अधिकांश व्यक्तियों का पाचन प्राय: ठीक नहीं होता। जितनी कम बार खाया जायेगा, उतनी भूख अच्छी लगेगी और पाचन अच्छा होगा। अत: जो मधुमेह अथवा पाचन संबंधी रोगों से पीड़ित हैं, उन्हें तो बार-बार कभी नहीं खाना चाहिए। परन्तु आज के आहार विशेषज्ञों का सोच इसके विपरीत पाया गया है। रोगी को थोड़ा-थोड़ा बार-बार खाने के लिये प्रेरित किया जाता है। जिस पर बिना किसी पूर्वाग्रह के शोध एवं चिन्तन आवश्यक है, ताकि मधुमेह तथा पाचन रोग जैसी असाध्य बीमारी से रोगी को राहत दिलाई जा सके।

जो व्यक्ति अपनी प्रकृति और मौसम के अनुकूल भोजन करता है, भूख से थोड़ा कम और नियमित समय पर भोजन करता है, वह दीर्घजीवी होता है। आधुनिक खान-पान के समय की एक और विशेषता है कि जब शरीर श्रम करता है, तब उसे कम आहार दिया जाता

है, और जब वह विश्राम की अवस्था में होता है तो उसे अधिक मात्रा में कैलोरीयुक्त आहार दिया जाता है। दिन का समय जो परिश्रम का होता है तब तो व्यक्ति हल्का भोजन, नाश्ता, चाय, काफी, ठंडे पेय आदि कम केलोरी वाले आहार करता है और रात्रि में जो विश्राम का समय होता है, प्राय: गरिष्ठ भोजन करता है, जो स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों के विपरीत होता है।

भोजन कैसा हो?

आजकल अप्राकृतिक रासायनिक खाद के उपयोग एवं कीटाणुनाशक औषधियों के अधिक प्रयोग के कारण बाजार में उपलब्ध अधिक खाद्यान्न, फल और सब्जियाँ दूषित हो जाती है। वे शरीर का सम्पूर्ण पोषण नहीं कर सकतीं, बल्कि उनके सेवन से शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने की संभावना रहती है। हमारे स्वस्थ शरीर में अम्ल क्षार का अनुपात 20/80 प्रतिशत होता है। अत: भोजन में भी यथा संभव 80 प्रतिशत क्षार तत्त्व 20 प्रतिशत अम्ल तत्त्व होने चाहिए, जिससे शारीरिक अवयवों का सही निर्माण हो सके।

अत: जिन खाद्य पदार्थों के उत्पादन में रासायनिक खाद, विषैली कीटनाशक दवाओं का उपयोग न किया गया हो, जिसको प्राप्त करने के लिए किसी भी चेतनाशील प्राणी की हत्या न की गई हो अथवा उन पर क्रूरता, अत्याचार और कष्ट नहीं दिये गये हों, जो भोजन अपनी प्राकृतिक अवस्था और स्वरूप में हों उसकी अवस्था एवं स्वरूप में कम से कम परिवर्तन हुआ हो, ऐसे अपनी आवश्यकता के अनुरूप पौष्टिक पदार्थों से ओतप्रोत सात्त्विक भोजन को ही सर्व श्रेष्ठ भोजन कहा जा सकता है।

"पशु खाता है केवल पेट भरने के लिए, मूर्ख खाता है केवल स्वाद के लिए।
बुद्धिमान खाता है आरोग्य और शक्ति के लिए, सन्त खाता है केवल साधना के लिए।।"

हम स्वयं निर्णय करें कि हम कैसा भोजन कर रहे हैं। यदि हम अपने आपको बुद्धिमान समझते हैं, तो भोजन को ग्रहण करने से पूर्व एक क्षण चिन्तन करें कि क्या भोजन हमारे अनुकूल है? किसी प्राणी के अपवित्र रक्त, मांस और चर्बी की गंदगी तो उसमें नहीं है? किसी बेगुनाह जीव की हत्या से निर्मित उस जीव की बददुआओं की तरंगें भोजन के माध्यम से पेट में जाकर हमारे में हिंसा, क्रूरता, निर्दयता और प्रतिहिंसा की ज्वाला तो पैदा नहीं करेगी? अत: भ्रामक विज्ञापनों से प्रभावित होकर अखाद्य वस्तु पेट में डालकर अपने पेट को कूड़ादान न बनायें।

जो भोजन उपर्युक्त तथ्यों के जितना समीप होता है, उसी अनुपात में उसका लाभ अधिक मिल सकता है। क्योंकि भोजन में न केवल पदार्थ का ही महत्त्व होता है, अपितु उसके बनाने के ढंग और बनाने वालों के भावों, शारीरिक स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है।

भोजन बनाने हेतु सावधानियाँ

जो महिलाएँ मासिक धर्म से होती हैं, उनका आभामंडल विकृत हो जाता है। उनके सम्पर्क में आने वाले पदार्थ भी विकृत हो जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ उस अवस्था में महिलाओं को भोजन बनाने और पीने के पानी के संग्रह वाले स्थानों के स्पर्श पर पहले पूर्ण प्रतिबंध था। परन्तु आजकल पाश्चात्त्य संस्कृति के अन्धानुकरण के परिणाम स्वरूप अज्ञान और विवेक की कमी के कारण पढ़ी लिखी अधिकांश महिलाएँ उस नियम का प्रायः पालन नहीं करतीं, जिससे उनके द्वारा बनाया गया भोजन विकृत हो जाता है। जिस पर वर्तमान वैज्ञानिकों द्वारा किये गये निष्कर्षों के आधार पर सम्यक् चिन्तन और आचरण अनिवार्य है, किन्तु उपेक्षा अनुचित है।

दूसरी बात, उबालने, मिक्सी में रस निकालने, फ्रीज अथवा स्टोरेज में रखने से खाद्य पदार्थों का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाता है और पौष्टिक तत्त्वों में कमी आ जाती है। भोजन बनाते समय भी आजकल स्टील, एलुमीनियम और प्लास्टिक के बर्तनों का प्रयोग अधिक होता है, जिससे भोजन में हानिकारक, रासायनिक पदार्थों के मिश्रित होने की संभावना बढ़ जाती है। ऐसा भोजन शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता घटाता है।

एलुमीनियम थोड़ी सी गर्मी पाकर गलने लगता है और खाद्य पदार्थों के साथ पेट में जब पहुँच जाता है तो, अपाच्य विकार पैदा करता है, जिससे गुर्दे में पथरी और आंतों में खराबी होने की संभावनाएँ बढ़ सकती हैं। अतः यथा संभव एलुमीनियम के बर्तनों का उपभोग खाना बनाने में नहीं करना चाहिए। परन्तु आजकल प्रायः घरों में कूकर, ओवन आदि एलुमीनियम के ही उपकरण भोजन बनाने में काम लिए जाते हैं, जो उचित नहीं है।

इसी कारण हमारे पूर्वज भोजन बनाने में मिट्टी के बर्तनों तथा अपनी क्षमतानुसार चाँदी के बर्तनों का उपयोग खाना खाने में करते थे। इस संबंध में विस्तृत जानकारी धातु चिकित्सा करने वाले अनुभवी विशेषज्ञों से परामर्श कर प्राप्त की जा सकती है।

भोजन बनाने वालों के भावों का महत्त्व

भोजन बनाने वालों के भावों की तरंगें भी हमारे भोजन को प्रभावित करती हैं। माता और पत्नी जिस प्रेम से अपने पुत्र एवं पति को खिलाने हेतु भोजन बनाती हैं, उसमें बाजार में उपलब्ध पौष्टिक पदार्थों से अधिक ऊर्जा और तृप्ति मिलती है। भोजन जिन भावों से बनाया जायेगा, खाने वाले का मन उसी के अनुरूप बन जायेगा। इसीलिये हमारे यहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है- **''जैसा अन्न वैसा मन, जैसा मन वैसा चिन्तन। जैसा चिन्तन वैसा विचार। जैसा विचार वैसा स्वभाव। जैसा स्वभाव वैसी वृत्तियाँ और जैसी वृत्तियाँ**

वैसे संस्कार।"

खाया हुआ भोजन तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल भाग मल बनता है, मध्यम अंश से शरीर के अवयवों का निर्माण होता है। सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दही के मन्थन से उसका सूक्ष्म अंश ऊपर आकर मक्खन बन जाता है, जिसको और तपाया जाये तो घी बन जाता है। ठीक उसी प्रकार अन्न के भावांश से मन बनता है। इसी कारण होटल के खाने से पेट तो भर सकता है, परन्तु मन नहीं। पेट भोजन से भर सकता है, परन्तु मन तो भोजन में होने वाले भावों से ही भरता है। जैन आगमों में निर्दोष आहार-प्राप्ति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन मिलता है। आध्यात्मिक संतों का आहार कैसा हो? उसे कैसे प्राप्त किया जाए? उसको ग्रहण कैसे किया जाए तथा ग्रहण करते समय कैसा चिन्तन हो? साधुओं को आहार लेते समय जिन 42 दोषों की चर्चा की गई है तथा आहार ग्रहण करते समय जिन 47 दोषों से सावधान रहने का जो निर्देश दिया गया है, निश्चय ही पठनीय, मननीय, चिन्तनीय एवं आचरणीय है। ऐसा आहार ही साधक को शरीर के पोषण के साथ-साथ मन को संयमित, नियन्त्रित एवं पोषण करने वाला होता है। जिज्ञासु पाठक उनका अध्ययन कर अपने आहार को अधिकाधिक सात्त्विक बनाएं, ऐसा अपेक्षित है। इसी कारण तामसिक भोजन करने वाला तामसिक वृत्तियों वाला होता है। तामसिक व्यक्ति शरीर के लिए जीता है। उसके लिये बाकी सब बातें गौण होती हैं। उसके भोजन का उद्देश्य होता है स्वाद और पेट भरना। परिणाम स्वरूप वह अधिक प्रमादी होता है। राजसिक भोजन से मन और बुद्धि चंचल होती है। राजसिक प्रवृत्ति वाले अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं। अत: उन्हें उत्तेजना पैदा करने वाला भोजन अच्छा लगता है। सात्त्विक भोजन ही संतुलित होने से सर्वश्रेष्ठ होता है। क्योंकि ऐसा भोजन करने से न तो उत्तेजना आती है, न मादकता, न आलस्य और न कमजोरी। परन्तु स्फूर्ति और ताकत प्राप्त होती है।

बाजार में उपलब्ध भोजन तथा कारखानों में निर्मित पदार्थो में घर में बने भोजन जैसी पवित्रता, स्वच्छता, विवेक और उच्च भावों का अभाव होने से, उस भोजन से मात्र पेट भरा जा सकता है, परन्तु शरीर में आवश्यक अवयवों का पूर्ण निर्माण प्राय: नहीं होता। अपितु अपाच्य पदार्थो के विसर्जन हेतु शरीर को अधिक ऊर्जा खर्च करनी पड़ती हैं। परन्तु आजकल घर में भोजन बनाने को मजबूरी समझा जाता है और बाहर बने बनाये पदार्थो को खाने का प्रचलन काफी बढ़ गया है, जिससे न केवल स्वास्थ्य बिगड़ता है, अपितु पारिवारिक प्रेम, अपनापन और घनिष्ठता समाप्त हो रही है, जो भारतीय संस्कृति की पवित्र परम्पराओं के लिए घातक है।

भोजन भी दवा है

भोजन के मुख्यरूप से छः स्वाद होते हैं- 1. मीठा, 2. खट्टा, 3. नमकीन, 4. तीखा, 5. कड़वा, 6. कषैला। अधिकांश व्यक्तियों के भोजन में प्राय: अंतिम दो स्वादों का अभाव होता है। यदि भोजन में इनका समुचित समावेश किया जाये तो मधुर स्वाद का दुष्प्रभाव दूर हो जाता है और पाचन सुधरता है।

प्राकृतिक चिकित्सकों और आहार विशेषज्ञों के दृष्टिकोण से भोजन ही औषधि है। अत: उनकी मान्यता के अनुसार रोगी का उपचार चिकित्सालय की अपेक्षा भोजनालय में होना चाहिए। बड़े-बड़े अनुभवी हृदयरोग चिकित्सक दवाओं के दुष्प्रभावों के कारण मात्र संतुलित भोजन से हजारों हृदय रोगियों का सफल उपचार करने में सफल हुए हैं। स्वस्थ होने पर भोजन पोषण का और रोग होने पर रोग को दूर करने के लिए औषधि का कार्य करता है।

शरीर के लिए अनावश्यक, अपाच्य, अभक्ष्य, अखाद्य पदार्थों को खाना, पेट को कचरा पेटी बनाना है। गलत आहार जितनी सरलता से गले के नीचे उतर जाता है, उतनी सहजता से उसके अपाच्य तत्त्व, पेट से बाहर नहीं निकल पाते। इस प्रकार व्यक्ति अज्ञान और अविवेक के कारण स्वयं गलती करता है और रोग को गले लगाता है। साथ ही अपनी लापरवाही के कारण रोगों को बढ़ाता रहता है। ऐसा मानव क्या स्वयं के प्रति ईमानदार कहा जा सकता है?

भोजन कितना, कैसे और कहाँ खाया जाये

भोजन उतना ही करें, जिसका पूर्ण पाचन हो सके। हम प्राय: जितना खाते हैं, उसके दो तिहाई भाग से हम जीवित रहते हैं तथा एक तिहाई भाग से चिकित्सक। पाचन संस्थान शरीर का वह तंत्र है जो आहार को ग्रहण करने, उसका पाचन करने, पाच्य आहार से शरीर के लिए आवश्यक समस्त पोषक तत्त्वों का अवशोषण करने तथा पाचन एवं अवशोषण के उपरान्त जो अनुपयोगी पदार्थ बचते हैं, उन व्यर्थ पदार्थो का मल के रूप में शरीर से बाहर निकालने का कार्य करता है। उपर्युक्त कार्यो में यदि कहीं भी अपूर्णता रहती है अथवा अवरोध होता है तो जो भोजन शक्तिवर्धक होना चाहिये, वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हो जाता है।

पाचन क्रिया का प्रारम्भ मुँह से होता है। भोजन को खूब चबाकर धीरे-धीरे खाना चाहिए, ताकि उसमें अधिक से अधिक लार और थूक का मिश्रण हो सके। ऐसा करने से भोजन का अधिकांश पाचन मुंह में ही हो जाता है। अधिक स्वाद मिलता है, और भोजन से तृप्ति होती है। परन्तु आज तेजी का युग है, प्रत्येक व्यक्ति कम समय और कम श्रम में

जीवन की समस्या का सरलतम समाधान चाहता है। परिणाम स्वरूप भोजन के लिये अधिकांश व्यक्तियों को समय ही नहीं होता है। वे मात्र मजबूरी में खाना खाते हैं। शान्ति, प्रसन्नचित्तता, एकाग्रता से मौन पूर्वक खाना नहीं खा सकते। भोजन करते समय सारा ध्यान भोजन में होना चाहिए न कि कुछ देखने, सुनने, पढ़ने अथवा बातचीत करने में, क्योंकि बोलते रहने से मुँह में लार कम बनती है। फलत: मुँह सूखने लग सकता है। जिससे भोजन के बीच में पानी पीना पड़ता है। भोजन के बीच में पानी पीने से पेट की जठराग्नि शान्त हो जाती है और आमाशय में भोजन को पेन्क्रियाज, लीवर, गाल ब्लेडर आदि से मिलने वाले पाचक रस पतले हो जाते हैं। फलतः आमाशय में भोजन का पूर्ण क्षमता से पाचन नहीं हो पाता।

दूसरी बात, भोजन को चबा-चबा करने से, भोजन में जो शर्करा का अंश होता है, वह प्रचुर मात्रा में थूक में मिलने से मुँह में ही पाचन हो जाता है और पेन्क्रियाज को उस शर्करा को पचाने के लिये ज्यादा इंसुलिन की आवश्यकता नहीं होती। अत: मधुमेह और पाचन संबंधी अन्य रोगियों के लिये धीरे-धीरे पूरा चबाकर भोजन करना सर्वोत्तम औषधि का कार्य करता है।

तीसरी बात, भोजन खड़े-खड़े नहीं करना चाहिए। क्योंकि उससे आमाशय को भोजन पचाने हेतु अधिक श्रम करना पड़ता है। भोजन पालकी आसन में बैठकर करना चाहिए। भोजन करने से पूर्व अपने आराध्य का स्मरणकर सुपात्र दान की भावना रखनी चाहिए। भोजन को प्रसाद समझ कर खाना चाहिए। भोजन समभाव पूर्वक अर्थात् बिना किसी प्रतिक्रिया, निंदा अथवा प्रशंसा के करना चाहिए। भोजन का एक कण भी झूठा नहीं डालना चाहिए। भोजन करने के पश्चात् ''आरोग्य बोहि लाभं, समाहिवर-मुत्तमं दिन्तु''- अर्थात् ग्रहण किया गया भोजन मुझे अरोग्य, निर्मल बुद्धि एवं सम्यक् श्रद्धा का पात्र बनाये- ऐसा चिन्तन करना चाहिए। हमारे आसपास जो उपस्थित हों, उन्हें भोजन का निमन्त्रण देकर भोजन करना चाहिए। क्योंकि भूखे को भोजन खिलाकर भोजन करना हमारी संस्कृति है। पूर्व दिशा में शक्ति के स्रोत सूर्य का उदय होता है। अत: पूर्व दिशा की तरफ मुख करके भोजन करने से भोजन की शक्ति बढ़ जाती है। भोजन करते समय सूर्य स्वर चलाना चाहिए ताकि भोजन का पाचन अच्छा होता है। भोजन में कम से कम पदार्थों का समावेश होना चाहिए। अथवा जिन पदार्थों को आपस में मिलाया जा सकता है, उन्हें मिला देना चाहिए ताकि भोजन करते समय बार-बार स्वाद में परिवर्तन न हों, अथवा एक ही प्रकार के पदार्थ एक साथ खाना चाहिए। फिर दूसरे पदार्थ को खाना चाहिए। हम अच्छी तरह जानते हैं कि

जिस वाहन का गियर बार-बार बदला जाता है, उस वाहन को ज्यादा ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक कौर में स्वाद बदलने से भोजन के पाचन हेतु अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। भोजन स्वच्छ, प्रदूषण रहित स्थान पर करना चाहिए। भोजन करने और पानी पीते समय मेरु दण्ड सीधा नहीं होना चाहिए ताकि भोजन आमाशय में धीरे-धीरे पहुँचे।

भोजन में दृष्टि दोष

भोजन खिलाने वाले की सोच नकारात्मक, द्वेषात्मक, घृणात्मक नहीं होना चाहिए। भोजन में स्पर्श दोष की भांति दृष्टि दोष का भी प्रभाव पड़ता है। पौराणिक ग्रन्थों के अनुसार भोजन पर भूखे, नीच, दरिद्र, पाखण्डी, रोगी आदि की दृष्टि ठीक नहीं होती। उनकी विष दृष्टि भोजन में संक्रमित होने से भोजन अपाच्य बन जाता है। अच्छी या बुरी दृष्टि में कितनी शक्ति होती है, उसको आजकल सम्मोहन विद्या द्वारा प्रमाणित किया जा चुका है। व्यक्तियों की भांति अनेक पशु पक्षियों की दृष्टि भी भोजन के लिए हानिकारक होती है। अतः सर्प, कुत्ते, कौए, चील, मुर्गे आदि जानवरों की दृष्टि से भोजन को दूर रखना चाहिए। क्रोध अथवा अन्य किसी प्रकार के आवेग के समय भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन न अधिक गर्म और न अधिक ठण्डा होना चाहिए। शरीर के तापक्रम पर भोजन अधिक लाभप्रद होता है।

भोजन करते समय उपर्युक्त नियमों का जितना अधिक पालन किया जाता है, उतना भोजन सरस, सुपाच्य और स्वादिष्ट बन जाता है और भोजन से जो हम अपेक्षा करते हैं, उसका हमें पूरा-पूरा लाभ मिलता है।

भोजन के पश्चात् हमारी स्फूर्ति बढ़नी चाहिए। शरीर हल्का लगना चाहिए। भोजन के पश्चात् भारीपन अथवा निद्रा आना दुर्बल पाचन शक्ति के संकेत होते हैं। भोजन के तुरन्त बाद में कठिन परिश्रम कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि उस समय पाचन क्रिया हेतु अधिक रक्त संचालन की आवश्यकता आमाशय को होती है, जिसमें बाधा उत्पन्न होती है। भोजन के पश्चात् कुछ समय वज्रासन में बैठना, टहलना, स्वास्थ्य के लिए और पाचन के लिए लाभप्रद होता है। भोजन के पश्चात् निद्रा नहीं लेनी चाहिए। भोजन के पश्चात् निद्रा आने का कारण या तो आवश्यकता से अधिक भोजन करना अथवा ठण्डा, बासी, तामसिक भोजन करना होता है। इसको पचाने के लिए आमाशय को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप उस स्थिति में मस्तिष्क को आवश्यकता के अनुरूप ऊर्जा न मिलने से उसकी गतिविधि शिथिल हो जाती है और निद्रा आने लगती है।

-चोरडिया भवन, जालोरी गेट के बाहर, जोधपुर-342003 (राज.)
फोन: 0291-2621454, 94141-34606
E-mail: cmchordia.jodhpur@gmail.com, Website: www.chordiahealthzone.in

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता

जिनवाणी के इस अंक में प्रकाशित 'स्वास्थ्य-विज्ञान' स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित उपर्युक्त आलेख पर कुछ प्रश्न दिए जा रहे हैं, आप इनका उत्तर **15 मई 2014** तक श्री चंचलमल जी चोरडिया के उपर्युक्त पते पर अपने फोन नं., ई-मेल एवं पते सहित सीधे प्रेषित कर सकते हैं। विलम्ब से प्राप्त उत्तरों को प्रतियोगिता में सम्मिलित नहीं किया जाएगा। इस प्रतियोगिता में किसी भी वय का व्यक्ति भाग ले सकता है। सर्वाधिक अंक प्राप्तकर्ताओं को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार के अन्तर्गत 1000/-, 750/- एवं 500/- की राशि प्रेषित की जाएगी।

प्रश्न:-

1. भोजन को पूर्ण चबा-चबाकर क्यों करना चाहिये?
2. भोजन बार-बार क्यों नहीं करना चाहिये?
3. भोजन करते समय पानी कब पीना और कब नहीं पीना चाहिए?
4. भोजन कैसा होना चाहिए?
5. होटल में भोजन क्यों नहीं करना चाहिए?
6. भोजन करते समय क्या ध्यान रखना चाहिए?
7. भोजन बनाते समय क्या ध्यान रखना चाहिए?

स्वास्थ्य-आलेख प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता का परिणाम

जिनवाणी के फरवरी-2014 के अंक में 'स्वास्थ्य-विज्ञान स्तम्भ' के अंतर्गत '**निर्दोष प्रभावशाली चिकित्सा : एक्यूप्रेशर**' के प्रश्नों के उत्तर 24 प्रतियोगियों से प्राप्त हुए। सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले प्रतियोगियों के नाम इस प्रकार हैं-

पुरस्कार एवं राशि-	**नाम**	
प्रथम पुरस्कार (1000/-रु.)	श्रीमती रेखा जसवन्त नांगावत-मैसूर	(57/60)
द्वितीय पुरस्कार (750/-रु.)	श्री ज्ञानचन्द जी जैन-नदबई, भरतपुर	(56/60)
तृतीय पुरस्कार (500/-रु.)	श्रीमती नीता जैन-जयपुर	(55/60)

अन्य प्रतियोगी अपने अंक मालूम करना चाहें तो चंचलमल जी चोरड़िया-94141-34606 (मो.) से सम्पर्क कर सकते हैं। प्रतियोगी अपना नाम व पूरा पता उत्तरपुस्तिका एवं लिफाफे पर अवश्य लिखें। पता नहीं लिखे जाने पर उसे प्रतियोगिता में शामिल नहीं किया जाएगा।

बाल-स्तम्भ

प्रसन्नता का रहस्य

श्री स्वेट मार्डेन

बाल-स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित इस रचना को पढ़कर अन्त में दिए गए प्रश्नों के उत्तर 20 वर्ष की आयु तक के पाठक 15 मई 2014 तक जिनवाणी संपादकीय कार्यालय, सामायिक-स्वाध्याय भवन, कुम्हार छात्रावास के सामने, प्लॉट नं. 2, नेहरु पार्क, जोधपुर-342003(राज.) के पते पर प्रेषित करें। उत्तर के साथ अपनी आयु तथा पूर्ण पते का भी उल्लेख करें। श्रेष्ठ उत्तरदाताओं को श्री महावीरचन्द जी बाफना, जोधपुर द्वारा अपनी धर्मपत्नी एवं श्रीमती अरुणा जी, श्री मनोजकुमार जी, श्री कमलेश कुमार जी बाफना की माताश्री स्व. श्रीमती मोहिनीदेवी जी बाफना की पुण्य-स्मृति में पुरस्कृत किया जा रहा है। पुरस्कारों की राशि इस प्रकार है- प्रथम पुरस्कार-500 रुपये, द्वितीय पुरस्कार-300 रुपये, तृतीय पुरस्कार- 200 रुपये तथा 150 रुपये के पाँच सान्त्वना पुरस्कार।

ऐसा अक्सर होता है कि जब हम अपना प्रतिदिन का कार्य पूरी ईमानदारी से करते हैं, उसके क्रियान्वयन में किसी प्रकार की हिचकिचाहट भी नहीं दिखाते, तब उसका परिणाम भले ही कुछ भी हो, मगर उससे हमें प्रसन्नता प्राप्त होती है। सन्तोष मिलता है।

इसी प्रसंग में **जॉर्ज हरबर्ट** ने कहा था- ''मनुष्य को यह आभास होना चाहिए कि उसने अपने कर्तव्य का पालन किया है।''

ग्लेडस्टोन ने कहा था- ''मैंने बचपन में ही उद्यम करने की आदत डाल ली थी। परिश्रम करने से ही मुझे सबसे अधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस आदत का प्रतिफल भी मुझे प्राप्त हुआ है। कुछ युवक विश्राम का गलत अर्थ लगाते हैं। वे सोचते हैं कि अपने कार्य से मुंह मोड़ लेना, प्रयत्नों से विमुख होना ही विश्राम है, किन्तु मुझे सबसे अधिक विश्राम तब मिलता है, जब मैं एक काम को पूरा करके दूसरा काम करने लगता हूँ। जब पढ़ते-लिखते या काम करते समय मस्तिष्क थकान अनुभव करने लगे तो बाहर की खुली हवा और धूप में चले जाइए और अनुभव कीजिए कि आप थकान से छुटकारा पा रहे हैं। शरीर को स्वस्थ और स्फूर्तिदायक बनाने का प्रयत्न कीजिए। इन विचारों और एहसास से आपका मस्तिष्क शान्त और स्थिर हो जाएगा। शरीर को स्वस्थ रखने के प्रकृति के प्रयत्न हमेशा चलते रहते हैं। इसका उदाहरण है कि जब हम सोते हैं तब भी हमारे दिल की धड़कनें जारी रहती हैं। मैं सदा प्रकृति के निकट रहने का प्रयत्न करता हूँ और उसका अनुसरण करता हूँ। इसके परिणामस्वरूप मुझे सुखद गहरी नींद, पूर्ण पाचन शक्ति और दूसरे दिन के कार्य के लिए पूरी ऊर्जा प्राप्त होती है। मैं समझता हूँ कि श्रम का यही मुख्य पुरस्कार है जो

मुझे प्राप्त होता है।''

दुनिया में जितने भी सफल व्यक्ति हुए हैं, वे किसी भी क्षेत्र के क्यों न हों, उन्होंने प्रसन्नता को बहुत ही अधिक महत्त्व दिया।

प्रसन्न रहना, हंसते-मुस्कराते रहना भी सफलता का एक रहस्य है। उन्होंने अपने-अपने अमूल्य विचार और अनुभव आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अनमोल खजाने के रूप में दिए हैं।

होरस ने कहा था- ''अच्छे स्वभाव के कारण मेरे लिए काम का सदा वही महत्त्व रहा है जो मछली के लिए जल का होता है। मुझे लोगों के मुख से यह सुनकर सदा आश्चर्य होता है कि मुझे यह काम पसंद नहीं या मैं इसके बदले वह काम करता तो ज्यादा अच्छा होता। मेरे सामने जब भी कोई काम आया मैंने उसके विषय में कभी नहीं सोचा, बल्कि जी-जान से उसे करने में जुट गया और जिस प्रकार रात के बाद दिन का होना या आना निश्चित होता है, उसी प्रकार मेरे काम का सम्पन्न होना भी निश्चित ही रहा।''

दूसरों को आनन्द देने से बढ़कर कोई सुख नहीं

दूसरों को आनन्दित करने से बढ़कर और कोई आनन्द नहीं है। दूसरों को सुख देकर मनुष्य को जिस आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

लिंकन ने कहा था- ''भगवान भी जन-सामान्य को ही अधिक प्यार करता है, इसीलिए तो उसने उनकी संख्या अधिक और दूसरों की कम रखी है। अपनी प्रसन्नता के सभी प्यालों को दूसरों को समर्पित करने से बढ़कर और कौनसा दैवी कार्य हो सकता है। जो इस प्रकार के कार्यों में लगा हुआ है, उससे बढ़कर और कोई धनी नहीं हो सकता। दूसरे लोगों पर भगवान का वरदहस्त रहे, यही स्वर्ग का सबसे बड़ा सुख है।''

जो लोग दूसरों के अंधकारपूर्ण जीवन में अपने प्रयत्नों से सूर्य का प्रकाश पहुँचाते रहे हैं, इस संसार में युगों-युगों तक उनकी स्मृति बनी रहेगी, वक्त की गर्द उन्हें ढक नहीं सकती, वे अमिट रहेंगी।

लैंब ने कहा है- ''धन से मनुष्य को कभी आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती, न ही आज तक हुई है, मेरे लिए यही सबसे बढ़कर आनन्द की बात है।''

इसी सम्बन्ध में **फ्रेंकलिन** ने भी कहा है- ''धन ने आज तक किसी को भी प्रसन्नता प्रदान नहीं की....किसी को आनन्द प्रदान करना धन का स्वभाव ही नहीं है।''

सच्चा सुख और सच्चा आनन्द तो पर-उपकार अर्थात् परोपकार से ही प्राप्त होता है। जिन्होंने परोपकार किया है, उनका जीवन सुखी रहा है। वास्तव में सच्चा सुख उन्होंने ही

पाया है। धन से सुख की कामना करने वाले स्वयं को भ्रमित किए हुए हैं, वे स्वयं को धोखा देते हैं। इस संदर्भ में हम प्रसिद्ध कवयित्री जीन एंग्लो का उदाहरण ले सकते हैं। उन्हें अपनी पुस्तकों से जो भी आय होती थी, वे उसे दानकर दिया करती थीं। उन्होंने एक कॉपीराइट भोज निर्धारित किया हुआ था। उनके निवास के समीप के जो अस्पताल होते थे, वहाँ से जो निर्धन रोगी घर जाने वाले होते थे, उन्हें वे सप्ताह में तीन बार इस भोज पर आमंत्रित करती थीं। इससे उन्हें अत्यधिक खुशी मिलती थी। आत्मसंतोष प्राप्त होता था। आत्मिक शान्ति मिलती थी।

इसी प्रकार जो-रस्किन को जब उत्तराधिकार में रकम मिली तो उसने उस धन को अच्छे कार्यों में लगाया। जो छात्र-छात्राएँ धनाभाव के कारण अपनी पढ़ाई जारी रखने की स्थिति में नहीं थे, उसने सहायता करके उनकी पढ़ाई जारी रखने में मदद की। कामकाजी महिलाओं व पुरुषों के लिए उसने आदर्श आवास की व्यवस्था की। लंदन के बाहर की ऊसर पड़ी भूमि को उसने खेती योग्य बनाने की दिशा में कार्य करवाया, फिर ऐसे लोगों को उसने उस भूमि में काम करके ऊपर उठने का अवसर दिया जो स्वयं अपनी दुर्बलताओं के कारण या समाज के क्रूर व्यवहार के कारण पतित हो चुके थे।

निर्धन कलाकारों की सहायता के लिए वह सदा तत्पर रहता था, इस प्रकार उसने नवयुवकों में कला के प्रति आकर्षण और रुचि पैदा की। कई कलाकारों की कृतियाँ खरीदकर उसने उन्हें स्कूलों में टंगवा दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि उसने विरासत में मिले आधे से अधिक धन को इसी प्रकार के कार्यों पर खर्च कर दिया, किन्तु जिस समस्या को सुलझाने का बीड़ा उसने उठाया था, वह बढ़ती जा रही थी- गरीब विद्यार्थियों का तांता लगा ही रहता। कामकाजी व्यक्तियों की समस्याएँ कम अवश्य हुई थीं, किन्तु पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थीं। अतः उसने अपने लिए केवल उतनी ही सम्पत्ति रखी, जिससे उसे खर्चे लायक पन्द्रह सौ पौण्ड सालाना प्राप्त होते रहे। बाकी सम्पत्ति बेचकर उसने उसे ऐसे कार्यों में लगा दिया जिससे दूसरों को भला हो। आप समझ सकते हैं कि यह कार्य सैकड़ों यज्ञों से भी अधिक पुण्य का था। इससे उसे कितनी आत्मिक शान्ति मिली होगी। कितनी दुआएँ उसके लिए लोगों ने मांगी होंगी। इस प्रकार उसने इस लोक में यश पाया और परलोक भी सुधार लिया। इसीलिए पर-उपकार से बड़ा कोई कार्य नहीं।

-'हँसते-हँसते जीना सीखो' पुस्तक से संकलित

प्रश्नः-

1. जो-रस्किन ने अपने धन का सदुपयोग किस प्रकार किया?
2. "धन से मनुष्य को आनन्द नहीं मिलता"- क्या आप इस बात से सहमत हैं? तर्क दीजिए।

3. प्रसन्न रहने के लिए क्या-क्या उपाय बताए गए हैं?
4. प्रकृति के निकट रहना क्यों अच्छा है?
5. अर्थ बताइये- ऊसर भूमि, कॉपीराइट, पौण्ड, उत्तराधिकार, फलदायी, सौभाग्य, वरदहस्त, कृतियाँ।

बाल-स्तम्भ [फरवरी-2014] का परिणाम

जिनवाणी के फरवरी-2014 के अंक में बाल-स्तम्भ के अंतर्गत 'शाकाहार प्रतिष्ठित करके' रचना के प्रश्नों के उत्तर 55 बालक-बालिकाओं से प्राप्त हुए। पूर्णांक 40 हैं।

पुरस्कार एवं राशि	नाम	अंक
प्रथम पुरस्कार-500/-	अर्पित जैन-जोधपुर (राज.)	35
द्वितीय पुरस्कार-300/-	अनिकेत जैन-सवाईमाधोपुर (राज.)	33
तृतीय पुरस्कार- 200/-	भव्यता जैन-सैंती (राज.)	32.5
सान्त्वना पुरस्कार- 150/-	ए. मुस्कान-चेन्नई (चेन्नई)	32
	दीपेश जैन-जयपुर (राज.)	31.5
	एम. चिराग समदड़िया-चेन्नई	31
	निर्झर मेहता-मन्दसौर (मध्यप्रदेश)	31
	अखिल जैन-जयपुर (राज.)	30.5

सोच रे मानव.....

श्री चन्द्रपाल महनोत

सोच रे मानव तेरा इक दिन का ना ठिकाना है, सब तो यहीं रह जाना है।
ना मिले हर बार जीवन, मौका ये सुहाना है, सब यहीं रह जाना है।।
जो है तेरी करनी, वो तुझे भरनी, ये समझावे रे।
छोड़ अमृत को, विष को पीता है क्यों, इतराये रे।।
जाग रे बन्दे, नहीं तो बाद में पछताना है, सब यहीं रह जाना है।।
जो तेरा है वैभव, वो है पाप की गठरी, क्यों इसे खोलता है।
तोड़ दे बन्धन तुझे इक रोज यहाँ से जाना है।
जो सोचता है अपना, झूठा है वो सपना, तू इसमें डोलता है।
जो कह गये ज्ञानी, सत्य है वाणी, तू इसको भूलता है।।
जो पुण्य है प्यारे उसको साथ निभाना है, सब तो यहीं रह जाना है।
सोच रे मानव तेरा इक दिन का ना ठिकाना है।..

-तिवाड़ी का बाग, आदर्शनगर, जयपुर-302004 (राज.)

कृति की 2 प्रतियाँ अपेक्षित हैं

नूतन साहित्य

डॉ. श्वेता जैन

गौतम से प्रभु फरमाते - प्रस्तुति- श्री सम्पतराज चौधरी, ***प्रकाशक***- सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.) दूरभाष- 0141-2575997, 2571163, फैक्स-2570753, Email-sgpmandal@ yahoo.in, ***पृष्ठ***-16+175, ***मूल्य***-70 रुपये मात्र, सन्-2014

मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. द्वारा रचित गीतों के संकलन की यह सुन्दर प्रस्तुति है। प्रार्थना, पुकार, समर्पण, अहोभाव के रंगों में रंगी यह भावपूर्ण कृति सहृदय के मन को शुभ भावों में आप्लावित करती है। प्रभु-वन्दना, आत्म-संबोधन, गुरु-भक्ति एवं अन्य बोधप्रद गीत- इन चार वर्गों में इस काव्य रचना को संयोजित किया गया है। रचनाकार गीतियों के माध्यम से अपने भावों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- "बस एक तमन्ना है, मैं प्रभु सम बन जाऊँ", "नहीं विचलित होऊँ सत्पथ में", "मुक्ति का वरदान दो", "शाश्वत सुख की राह दिखा दो", "अर्पण है जीवन चरणों में तेरे", "जागो मेरे चेतन खुद को न भूलो", "दुःख को मानूँ वरदान, बाधाओं से खेलूँ" आदि। आचार्य श्री हस्ती के प्रति लेखक के भक्तिपूर्ण भावों की शृंखला काव्यमाला में यहाँ प्रस्तुत है। इसमें कतिपय शिविर गीत, प्रतिक्रमण गीत, दीक्षा गीत, पर्युषण गीत भी संकलित हैं। अन्त में श्री सम्पतराज जी चौधरी ने मुनि श्री के उद्गारों के आधार पर सौ पद्यों की रचना कर 'संवाद शतक' से ग्रन्थ को पूर्णता दी है। आर्ट पेपर पर सुन्दर चित्रों से योजित इस पुस्तक में प्रत्येक पृष्ठ पर आगम सूक्तियाँ भी दी गई हैं। चार माह पूर्व छपी पुस्तक का यह संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के कार्याध्यक्ष एवं कवि श्री सम्पतराज जी चौधरी द्वारा श्रमपूर्वक सम्पादित किया गया है।

कर भला सो हो भला- लेखक- श्री कपिल कुमार जैन, ***प्राप्ति स्थान***- 1332, कामधेनु डेरी के पीछे, पी.एल. शर्मा रोड़, मेरठ, ***पृष्ठ***- 4+116, ***मूल्य***- स्वाध्याय, सन् 2014

यह एकादश लघु एकांकियों का संग्रह है। विविध भूमिकाओं पर लेखक ने एकांकी प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। यथा- शरीर और आत्मा का संवाद, छुल्लक जी का प्रवचन, भगवान् महावीर का बालवय, गुलाब के पौधे से संवाद, यमराज का कथानक, अकबर-बीरबल का संवाद, महात्मा गाँधी के जीवन के प्रसंग, भगवान और शिल्पकार, युधिष्ठिर, भीम और श्रीकृष्ण की चर्चा। दिगम्बर परम्परा की छवि का अंकन एकांकियों में दृष्टिगोचर होता है। दूसरों का भला करने से अपना भला होता है, आत्मा ही मित्र है और शत्रु है,

संयम सर्वत्र पूज्य होता है, पर-गुणों को देखो, दोषों को नहीं, पैसा साधनमात्र है, अपने वचनों का उपयोग सावधानी से करो, शाकाहारी बनने की प्रेरणा, विनयशीलता से जीवन-विकास होता है, गंगा स्नान से पाप नहीं धुलते अपितु धर्म-ध्यान से पाप धुलकर शुद्धि होती है- इस प्रकार के संदेश एकांकियों से मिलते हैं। प्रत्येक एकांकी के बाद गीत भी संकलित किए गए हैं। इन एकांकियों के आधार पर जैन नाटिकाएँ खेली जा सकती हैं।

रत्नसंघ की दिव्य मणि*- *संपादक- श्री धर्मचन्द जैन, ***प्रकाशक***-सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, दुकान नं. 182 के ऊपर, बापू बाजार, जयपुर-302003 (राज.) दूरभाष-0141-2575997, 2571163, फैक्स-2570753, Email-sgpmandal@ yahoo.in, ***पृष्ठ***-6+66, ***मूल्य***-10 रुपये मात्र, सन्-2014

प्रस्तुत पुस्तक में प्रवर्तिनी महासती श्री बदनकंवर जी म.सा. का संक्षिप्त जीवन-चरित्र वर्णित है। साथ ही रत्नसंघ की कतिपय विशिष्ट महासतियाँ ज्ञानकंवरजी, जसकंवरजी, रंभाजी, जड़ावकंवर जी, पानकंवरजी, छोगाजी, अमरकंवरजी, बड़े धनकंवरजी, रूपकंवर जी, सुन्दरकंवरजी, सज्जनकंवरजी, गोगाजी, लाडकंवरजी, सायरकंवरजी, मैनासुन्दरी जी, संतोष कंवरजी, शांतिकंवरजी का परिचय दिया गया है।

महासती श्री बदनकंवरजी की बालवय में धार्मिक रुचि, युवावय में विवाह के पश्चात् पति का वियोग, संत-समागम, वैराग्य भावों का अंकुरण, बड़ी कठिनाई से संयम लेने की अनुमति, जोधपुर में दीक्षा आदि प्रसंगों का सुन्दर चित्रण हुआ है। दीक्षा के पश्चात् आपने ब्यावर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर, कोसाणा आदि स्थानों पर 60 चातुर्मास किये तथा 25 वर्ष का स्थिरवास जोधपुर में पूर्ण किया। इस पुस्तक की विषय सामग्री का संकलन शासन प्रभाविका, साध्वी प्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा. के सान्निध्य में किया गया है।

सौमत्यम्- श्री सुमतिमुनिजी म.सा., ***प्रकाशक***- श्री नूतन ज्ञान कोष सेवा संस्था, श्री श्रुताचार्य चौथ स्मृति भवन, महिला बाग, जोधपुर-342002 ***पृष्ठ***-376, ***मूल्य***-50 रुपये मात्र, सन्-2014

आचार्य श्री शुभचन्द्र जी म.सा. के सुशिष्य अध्यात्म-अनुप्राणित श्री सुमति मुनि जी की काव्यमयी कृतियों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। प्रारम्भ में श्री पुखराज जी मुणोत द्वारा मुनिश्री का जीवन परिचय वर्णित है। 'नमन स्तवन' शीर्षक के अन्तर्गत स्तुति, कीर्तन और भक्ति गीत तथा 'अस्तित्व बोध' शीर्षक में आत्मा-परमात्मा, चेतन-वक्तव्य और अध्यात्म गीत संकलित है। 'अस्तित्व-निखार' 'दीक्षा महत्ता', 'उपदेश' शीर्षक में भी अनेक पद्य संगृहीत हैं। बारह भावना, समिति-गुप्ति, पच्चीस क्रिया, दश धर्म, उत्तराध्ययन सूत्र, 22 परीषह विषयक ललित काव्य का संग्रह है। सभी गीत-भजन भावपूर्ण एवं सुगम हैं। अन्त में सुमति-प्रवचनांश भी दिए गए हैं।

समाचार-विविधा

विचरण-विहार एवं विहार दिशाएँ : एक नज़र में

(01 अप्रेल, 2014)

- जिनशासन-गौरव परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 7 इन्द्रगढ़ होते हुए झुण्डवा पधारे हैं, आगे उनियारा प्लांट की ओर विहार संभावित है।
- परमश्रद्धेय उपाध्यायप्रवर पंडितरत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. आदि ठाणा 5 सामायिक-स्वाध्याय भवन, पावटा, जोधपुर में विराज रहे हैं। जोधपुर में विचरण सम्भावित है।
- तत्त्वचिन्तक श्रद्धेय श्री प्रमोदमुनि जी म.सा. आदि ठाणा 5 अजमेर से जयपुर की ओर विहार कर रहे हैं।
- साध्वीप्रमुखा शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.आदि ठाणा 11 सिद्धान्तशाला पावटा, जोधपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री तेजकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 10 मेहला में विराज रहे हैं, दूदू की ओर विहार संभावित है।
- विदुषी महासती श्री सुशीलाकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 5 इन्द्रगढ़ में विराज रहे हैं।
- विदुषी महासती श्री सौभाग्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 मालवीय नगर स्थानक, जयपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 3 चौपड़ा सदन, सरदारपुरा, जोधपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा 7, 107-मौजी कॉलोनी, मालवीय नगर, जयपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 3 इन्द्रगढ़ में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा 5 जोधपुर से विहार कर दलजी की ढाणी पधारे हैं। बालोतरा की ओर विहार संभावित है।
- व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. आदि ठाणा 6 रामनगर में विराज रहे हैं, मैसूर की ओर विहार संभावित है।
- व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि ठाणा 4 चिकमनहल्ली विराज रहे हैं। बल्लारी की ओर विहार संभावित है।

- व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. आदि ठाणा 5 वारेगांव विराज रहे हैं। घोड़नदी होते हुए पूना की ओर विहार संभावित है।
- व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 कानपुर पधारे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री सुमतिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 4 जोधपुर से फींच पधारे हैं, बालोतरा की ओर विहार संभावित है।
- सेवाभावी महासती श्री विमलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 5 वैशाली नगर, जयपुर में विराज रहे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा. आदि ठाणा 5 इन्द्रगढ़ से विहार कर सवाईमाधोपुर पधारे हैं।
- व्याख्यात्री महासती श्री निष्ठाप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 3 शिमोगा विराज रहे हैं।

फाल्गुनी चौमासी पर सुमेरगंज मण्डी में पूज्यप्रवर का पावन प्रवास

मार्गस्थ ग्राम-नगरों में धर्म-धारा का प्रवाह

जिनशासन प्रद्योतक, आगम महोदधि, प्रशान्त-प्रतिभा विभूति, जन-जन की आस्था के केन्द्र, प्रवचनप्रभाकर, व्यसनमुक्ति, सामायिक-स्वाध्याय तथा रात्रिभोजन त्याग के प्रभावी प्रेरक परमाराध्य **परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा., महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनिजी म.सा. आदि ठाणा** 7 हाउसिंग बोर्ड, सवाईमाधोपुर से विहार कर 1 मार्च को कुश्तला पधारे। कुश्तलावासियों ने पूज्य गुरुदेव के पावन वर्षावास में नियमित रूप से सवाईमाधोपुर पहुँच कर प्रवचन श्रवण, तप-त्याग एवं व्रत-प्रत्याख्यान का महनीय लाभ लिया था।

कुश्तला में पूज्य गुरुदेव के पदार्पण से सभी श्रावक-श्राविका उल्लसित थे एवं उत्साहपूर्वक धर्माराधन का लाभ लेने हेतु तत्पर रहे। चिकित्सक श्री एस.आर.मेहता-जयपुर वालों का परिवार एवं श्रीमती विजया जी मल्हारा-जलगांव अपने परिवारजनों के साथ दर्शन एवं मांगलिक श्रवण के निमित्त गुरुचरणों में उपस्थित हुए। उनियारा संघ ने शेषकाल में फरसने हेतु विनति प्रस्तुत की। 2 मार्च को अनेक स्थानों से श्रद्धालुओं का संघसहित आगमन हुआ।

कुश्तला को उपकृत कर पूज्य गुरुदेव ने रवांजना चौड़, पीपलवाड़ा, खिजूरी होते हुए 7 मार्च को परीषह युक्त मार्ग से मोहम्मदपुरा पधार कर श्री लड्डूलाल जी जैन आदि की भावना को फलीभूत किया। राजमार्ग से एक ओर अन्दर बसे इस गांव में भी लगभग 250 से अधिक गुरुभक्तों ने पावन प्रवचनामृत का लाभ लिया। 8 मार्च को सेंदरी गूजरान में

विराजकर गुर्जर समाज के लोगों की धर्मभावना को प्रोत्साहित किया। इस दिन रायचूर से वीर परिवार के सदस्यगण श्री प्रकाशचन्द जी, श्री मीठालाल जी, श्री मुन्नालाल जी आबड़, वयोवृद्ध वीरमाता के साथ दर्शन एवं मांगलिक श्रवणार्थ पधारे। 9 मार्च को पूज्यप्रवर का बाबई पदार्पण हुआ, जहाँ लगभग 400 श्रद्धालुओं ने प्रवचन श्रवण का लाभ लिया। इसी दिन महावीर नगर, जयपुर का लोढ़ा परिवार चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। 11 मार्च को पूज्यप्रवर जयनगर पधारे तथा 12 मार्च को इन्द्रगढ़ पदार्पण हुआ। यहाँ पाली संघ विनति की भावना के साथ उपस्थित हुआ।

इन्द्रगढ़ से पूज्य गुरुदेव संतमण्डली एवं भक्तों के जयनाद के साथ उल्लासपूर्ण वातावरण में फाल्गुनी चौमासी हेतु 13 मार्च को सुमेरगंज मण्डी पधारे। आपके मंगल प्रवेश के साथ ही यह धरा धन्य हो गई। सम्पूर्ण नगर आचार्यप्रवर के दर्शनों हेतु उमड़ पड़ा। विहार में समीपस्थ ग्राम-नगरों के अनेक श्रद्धालु उपस्थित थे।

यहाँ पर स्थानकवासी समाज के मात्र 14 घर हैं, किन्तु श्रावकों की सूझबूझ से सम्पूर्ण वैश्य समाज एक हो गया एवं आचार्यप्रवर के शुभागमन पर पलक पांवडे बिछा दिए। सबने आचार्यप्रवर के यहाँ विराजने तक तन-मन-धन से धर्म लाभ लिया।

आचार्यप्रवर के सान्निध्य में विदुषी महासती श्री सुशीला जी म.सा. आदि ठाणा-5, व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा. आदि ठाणा-5 एवं महासती सरलेशप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा-3 के विराजने से नगर की महिलाओं में उल्लास व धर्म की प्रभावना का माहौल बन गया। 15 मार्च को सुदूर दक्षिण से श्रावकगण निमाज की विनति लेकर श्री चरणों में उपस्थित हुए। प्रतिदिन प्रार्थना, प्रवचन, रात्रिसंवर आदि में अच्छी उपस्थिति रही। सम्पूर्ण नगर आचार्यप्रवर के पावन पदार्पण को अपना सौभाग्य समझ रहा था।

रविवार, 16 मार्च 2014, फाल्गुनी पूर्णिमा का शुभदिन उपस्थित हुआ। आसपास के ग्राम-नगरों से विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में चातुमार्सिक पर्व तप-त्यागपूर्वक सानन्द मनाया गया। दया, एकाशन, उपवास, तेले आदि की तपस्याओं से धर्माराधना हुई। इस अवसर पर **श्रद्धेय श्री योगेशमुनि जी म.सा.** ने फरमाया कि होली पर बोली यानी वाणी पर नियंत्रण हो। आचार्य भगवन्त के जीवन से सीखें कि कम बोलें एवं समय पर बोलें। **व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा.** ने फरमाया कि इस त्यौहार को इस प्रकार मनाना चाहिए कि जिससे कर्म-बन्धन न हो। महासती श्री रक्षिता जी म.सा. ने फरमाया कि हम कषाय की होली जलाएँ। **महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा.** ने अपने प्रवचनामृत में फरमाया कि स्व से स्व का दर्शन करें। गुरु का सान्निध्य प्राप्त कर पापों का प्रक्षालन करें तथा धर्माराधना के द्वारा आत्मशुद्धि प्राप्त करें। यह दूसरा

फाल्गुनी चौमासी पर्व भी पोरवाल क्षेत्र में मनाया जा रहा है। फिर भी भक्ति की गंगा-यमुना का सुन्दर स्वरूप दिखाई दे रहा है। श्रद्धा से अभी भी क्षेत्र सराबोर है। चातुर्मास मिले या नहीं, भक्ति एवं उत्साह में कमी नहीं रहनी चाहिए। भगवन्त जो निर्णय करे उसे सहृदयता से स्वीकार करें। हम सभी गुरुचरणों में समर्पित भाव से आराधना कर कषायों की होली जलाकर पर्व की महत्ता को सार्थक करें।

पूज्य आचार्यप्रवर ने अपनी ओजस्वी वाणी में फरमाया कि जो पवित्र करता है वह पर्व है। हमने अपनी मलिन दृष्टि से होली को कलुषित कर दिया है। जिसके मन में राग है वह राग बढ़ाने की, जिसके मन में द्वेष है वह द्वेष बढ़ाने की बात करता है। दृष्टि को बदलने की जरूरत है। दर्पण में पर्वत दिखता है, किन्तु उससे वह भारी नहीं होता। हलुकर्मी व्यक्ति संसार सागर से तिर जाते हैं। भरत चक्रवर्ती ने दर्पण के समक्ष बैठकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। संत-सतियों का सान्निध्य मिले, इसलिए चातुर्मास की विनतियाँ लेकर आप लोग उपस्थित होते हैं, किन्तु चातुर्मास की विनति के साथ भव-भ्रमण मिटे, ऐसा उद्देश्य भी रहना चाहिए। आराधना के पर्व पर चेतना को जगाएँ।

प्रवचन सभा का संचालन श्री पारसचन्द जी जैन-इन्द्रगढ़ वालों ने किया। इस अवसर पर सवाईमाधोपुर, आलनपुर, हाउसिंग बोर्ड, मण्डी रोड, बजरिया, आदर्शनगर, कुश्तला, चौरू, अलीगढ़, बाबई, खिजूरी, पीपलवाड़ा, रवांजना, मोहम्मदपुरा, कोटा, इन्द्रगढ़, जरखोदा, समिधी, देई, चेन्नई, इन्दौर, हैदराबाद, जयपुर, हिण्डौन, चौथ का बरवाड़ा, खेरली, नवसारी, जोधपुर आदि संघों के अनेक सदस्य उपस्थित थे।

प्रवचन सभा में चातुर्मास की विनतियों के लिए समय न देकर 2 बजे पश्चात् का समय दिया गया। अतः 2 से 3.30 बजे तक अनेक श्रीसंघों ने चातुर्मासार्थ विनतियाँ गुरु चरणों में उपस्थित की। सर्वप्रथम **अलीगढ़-रामपुरा संघ** के मंत्री श्री लड्डूलाल जी जैन एवं श्री महेन्द्रकुमार जी जैन ने प्रभावशाली शब्दों में काव्यरचना के साथ विनति प्रस्तुत की। श्राविका मण्डल ने 'खुलवायेंगे-खुलवायेंगे-चौमासा अलीगढ़ खुलवायेंगे' के समवेत स्वर में अपनी विनति प्रस्तुत की। इसी के साथ चातुर्मासकालीन प्रत्येक दिवस की योजना का प्रारूप गुरु चरणों में प्रस्तुत किया। **हिण्डौन संघ** की ओर से श्री धर्मचन्द जी जैन ने गुरुदेव के चातुर्मास की विनति प्रस्तुत करते हुए वर्धमान नगर हिण्डौन के लिए महासती वृन्द के चातुर्मास की भी विनति की। **कोटा संघ** के मंत्री श्री बुद्धिप्रकाश जी जैन ने कहा कि कोटा सकल संघ दो वर्षों से गुरुदेव के चरणों में विनति करता आ रहा है। यदि हमें चातुर्मास प्राप्त हुआ तो तप-त्याग एवं धर्माराधना का ठाट लगेगा। कतिपय अन्य श्रावकों ने भी कोटा संघ को चातुर्मास से उपकृत करने हेतु भावभीना निवेदन किया। **चौथ का**

बरवाड़ा संघ के मंत्री श्री नीरज जी जैन ने भी चातुर्मास प्रदान करने हेतु विनति रखी।

इस अवसर पर लगभग 2000 श्रद्धालु भक्तों की उपस्थिति से सुमेरगंजमण्डी का समाज पुलकित था। 110 एकाशन, 20 उपवास, बेला-तेला आदि की तपस्याएँ सम्पन्न हुईं। पूर्व विधायक श्री हंसराज जी शर्मा ने भी भक्तिपूर्वक गुरुदेव का सान्निध्य प्राप्त किया। पूनमिया श्रावक श्री अमरचन्द जी सांड एवं श्री पारसमल जी खटोड़-विजयनगर ने गुरुसेवा का लाभ लिया।

17 मार्च को जबलपुर संघ चातुर्मास की विनति लेकर उपस्थित हुआ। 21 मार्च को बाड़मेर संघ तथा 22 मार्च को अजमेर संघ एवं ग्रेटर हैदराबाद संघ चातुर्मास की विनति लेकर पावन श्रीचरणों में उपस्थित हुआ।

चैत्र कृष्णा अष्टमी को आदिनाथ जन्मकल्याणक एवं पूज्य आचार्यप्रवर का 76 वां जन्मदिवस लगभग 1000 एकाशन तप के साथ मनाया गया

चैत्र कृष्णा अष्टमी प्रभु आदिनाथ जन्म कल्याणक के लिए विख्यात है। इसी दिन रत्नसंघ के अष्टम पट्टधर पूज्य आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का जन्मदिवस भी उपस्थित होता है। इस बार आचार्यश्री का 76 वां जन्मदिवस 24 मार्च 2014 को उपस्थित हुआ तथा देश के अनेक ग्राम-नगरों में तप-त्यागपूर्वक मनाया गया।

सुमेरगंज मण्डी- यहाँ आयोजित प्रवचन सभा में महासती मण्डल एवं संतप्रवरों ने पूज्य आचार्यप्रवर के अनेक सद्गुणों का ख्यापन किया। **महासती श्री सरलेशप्रभा जी म.सा.** ने गुरुदेव के यशस्वी-मनस्वी एवं तेजस्वी जीवन की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए प्रभु ऋषभदेव के साथ कुछ समानताओं का निरूपण किया। उन्होंने जीवन के कतिपय ऐसे घटना प्रसंग सुनाए जिनसे गुरुदेव के तेजस्वी जीवन का बोध होता है। बसवन्त पीपल गांव का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि यहाँ का स्थानक कभी बंद रहता था। किन्तु गुरुदेव की प्रेरणा से सौ स्वाध्यायी नियमित सामायिक करते हैं। **विदुषी महासती श्री सुशीला कंवर जी म.सा.** ने कहा कि कंवलियास में मैं पाट पर थी, महासती श्री विनयप्रभा जी पातरी लेकर आए, तभी छत के लेवड़े (प्लास्टर) गिरे, किन्तु हम दोनों सुरक्षित थे। पूज्य आचार्यश्री के स्मरण से शरीर को खरोंच भी नहीं आई। ऐसे गुरुदेव स्वस्थ रहें, दीर्घायु हों यही मंगल कामनाएँ हैं।

श्रद्धेय श्री मनीषमुनिजी ने फरमाया कि आज का दिवस भगवान एवं भाग्यवान बनने का पावन दिवस है। भग शब्द के 6 अर्थ होते हैं- ऐश्वर्य, रूप, यश, श्री, धर्म,

प्रयत्न। पूज्य आचार्यप्रवर में यह छहों अर्थ घटित होते हैं। आप साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के ऐश्वर्य से तथा स्वयं की साधना के ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। आप रूपवान हैं, यशस्वी हैं, श्री सम्पन्न हैं, धर्मोद्योतक हैं। ये पाँच बातें भाग्य से भी प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु प्रयत्न या पुरुषार्थ ही व्यक्ति को भगवान बनाता है। आप अहोरात्रि साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। आप अविस्मरणीय, अद्वितीय, अलौकिक, अचंभित एवं अविराम की साक्षात् प्रतिकृति हैं।

श्रद्धेय श्री योगेशमुनिजी म.सा. ने फरमाया कि आचार्यश्री वैराग्य के वैभव से वैभवशाली हैं। साधना की तेजस्विता से सम्पन्न हैं। आज के दिन हजारों जीवों ने जन्म लिया, किन्तु हम उन सबका गुणगान नहीं करते। जिन्होंने सद्ज्ञान प्राप्त कर आचरण में चरण बढ़ाएँ हैं, उन्हीं का गुणगान किया जाता है। आचार्यश्री अल्पाहारी हैं, गम खाना आपके जीवन का मूल मंत्र है। आज का दिन निर्णय का दिन है। आप श्री निर्लेप भावना से निर्णय करते हैं तथा निर्णय के पश्चात् निश्चिंत रहते हैं।

महान् अध्यवसायी श्रद्धेय श्री महेन्द्रमुनि जी म.सा. ने समय सीमा का ध्यान रखते हुए अल्पशब्दों में फरमाया कि आचार्य भगवन्त! आपकी आभा एवं आपके प्रवचन की प्रभा निरन्तर बढ़ती रहे, यही हमारी शुभकामना है।

पूज्य आचार्यप्रवर ने आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के जीवन पर प्रकाश डाला। तीर्थंकर ऋषभदेव ने मानव जाति को जीवन जीने की कला सिखाई तथा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। अणगार का अपना कोई घर नहीं होता, वह विचरण करता रहता है। चातुर्मास में त्रिरत्न की आराधना के लिए वह एक स्थान पर रहता है। चातुर्मास की विनतियाँ निरन्तर चल रही हैं।

चातुर्मास हेतु भरतपुर, हिण्डौन, कोटा और अलीगढ़ की विनतियाँ हैं। शारीरिक अशक्तता के कारण भरतपुर एवं हिण्डौन जाना संभव नहीं लगता। अलीगढ़ संघ की जैसी भक्तिपूर्ण विनति पहले कभी नहीं देखी। निषेध का संकेत कर देने के पश्चात् भी गत 35 दिनों से प्रतिदिन अलीगढ़ संघ के लोग विनति लेकर उपस्थित हो रहे हैं। उनकी विनति मौखिक ही नहीं, अपितु संवर एवं तप की आराधना के क्षेत्र में किए जाने वाले कार्यों की सूची के साथ प्रस्तुत की गई है। चातुर्मास में प्रतिदिन के कार्यक्रमों की रूपरेखा को देखकर प्रमोद होता है, किन्तु कोटा संघ की विनति सात संघों के साथ सकल संघ के रूप में चल रही है। अलीगढ़-रामपुरा के श्रावकों ने सवाईमाधोपुर के चातुर्मास में लाभ लिया है। अतः कोटा संघ को प्रधानता दी जा रही है। इसी के साथ पूज्य आचार्यप्रवर ने कुछ स्थानों के चातुर्मासों की घोषणा की, जिसका विवरण अलग से दिया जा रहा है।

जोधपुर- शान्त-दान्त गम्भीर परमश्रद्धेय **उपाध्यायप्रवर पण्डित रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा.**, मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. आदि ठाणा 5 तथा **साध्वीप्रमुखा, शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.**, व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवर जी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा 20 के सान्निध्य में शक्तिनगर में स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन के सभागार में जिनशासन गौरव पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 76 वां जन्मदिवस तप-त्यागपूर्वक मनाया गया, जिसका विवरण आगे दिया गया है।

चामराजपेठ (बैंगलोर)- श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, चामराजपेठ के तत्त्वावधान में व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा. तथा महासती श्री भाग्यप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा 6 के सान्निध्य में तीर्थंकर श्री आदिनाथ का जन्मकल्याणक एवं पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 76 वां जन्मदिवस 3-3 सामायिक की सामूहिक साधना एवं व्रतप्रत्याख्यानों के साथ मनाया गया। **महासती श्री प्रतिष्ठाप्रभा जी म.सा.** ने गद्य एवं पद्य में गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन किया। **महासती श्री भाग्यप्रभा जी म.सा.** ने गुरु हीरा के जीवन की प्रभावी झलकियाँ प्रस्तुत की और कहा कि संघ से संघनायक की तथा संघनायक से संघ की शोभा होती है। **व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलता जी म.सा.** ने भगवान आदिनाथ को धर्म पुरुष के रूप में निरूपित किया तथा गुरु हीरा की महिमा का निरूपण करते हुए कहा कि गुरु चार प्रकार से व्याख्यायित हो सकते हैं- दृष्टि गुरु, शब्द गुरु, स्पर्श गुरु और स्मरण गुरु। मुमुक्षु वैरागन बहिनों ने गुरु हीरा महिमा गुणगान समवेत स्वरों में प्रस्तुत किया। गुरु भक्त श्री महावीरचन्द जी मेहता ने ओजस्वी कंठ से भक्ति गीत प्रस्तुत किया। कार्यक्रम संचालक ओजस्वी पत्रकार श्री गौतमचन्द जी ओस्तवाल ने भगवान आदिनाथ जन्म कल्याणक, ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ आचार्य श्री हीराचन्द्र जी जन्मदिवस तथा वर्षीतप शुभारंभ दिवस के सम्बन्ध में चैत्र कृष्ण अष्टमी की महिमा बताई। उन्होंने आचार्य श्री हीरा के नागौर, अजमेर, बालोतरा, जलगांव एवं बैंगलोर वर्षावासों की विशेषताएँ प्रकट की। उन्होंने सती मण्डल के आगामी चातुर्मास बैंगलोर में प्रदान किए जाने हेतु विनति की।

चेन्नई- तीर्थंकर ऋषभदेव के जन्म एवं दीक्षा कल्याणक तथा पूज्य आचार्य श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के 76 वें जन्मदिवस पर स्वाध्याय भवन, साहूकार पेठ, चेन्नई के प्रांगण में चैत्र कृष्णा अष्टमी को 3-3 सामायिक की साधना की गई तथा इस पर्व को जप-तप-त्याग पूर्वक मनाया गया। श्रावकरत्न श्री नरेन्द्र कांकरिया ने तीर्थंकर ऋषभदेव एवं पूज्य आचार्य प्रवर के जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हुए आचार्यश्री के सन् 1980 एवं 2005 के

चातुर्मासों की विशिष्ट उपलब्धियों का उल्लेख किया। श्री विनोद जी जैन, श्रीमती तपस्या जी कर्णावट, श्री उगमचन्द जी कांकरिया, श्री चंपालाल जी भंसाली, श्री सुरेश जी हिंगड़, श्री चंपालाल जी बोथरा, श्रीमती संगीता जी बोहरा, श्री जवाहरलाल जी कर्णावट, श्री रमेश जी जांगड़ा, श्री आनन्द जी चोरडिया, श्री ज्ञानचंद जी बागमार ने आदिनाथ भगवान एवं आचार्य श्री के जीवन चरित्र पर स्तुति-भजन, गुणगान रूप में अपनी भावनाएँ व्यक्त की।

श्राविका मण्डल से निर्मलाजी चोरडिया, शशि जी कांकरिया, मनीषाजी कांकरिया ने रोचक प्रतियोगिता आयोजित की। "गुण सौरभ गणि हीरा" पुस्तक समस्त भाई-बहनों को प्रदान की गई। *-आर. नरेन्द्र कांकरिया*

पूज्य उपाध्यायप्रवर का पीपाड़ से जोधपुर पदार्पण

शान्त दान्त गम्भीर पूज्य उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा., मधुरव्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा. आदि ठाणा 5 पीपाड़ से 3 मार्च को विहार कर 20 मार्च को बनाड़ पधारे, जहाँ व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा ने दर्शनों का लाभ लिया। यहाँ पर जोधपुर वासियों ने भारी संख्या में उपस्थित होकर पूज्य उपाध्यायप्रवर एवं संत-सतियों के दर्शनों का लाभ लिया। अशक्तता की अवस्था में भी पूज्य उपाध्यायप्रवर शनैः शनैः विहारकर चैत्र कृष्णा अष्टमी 24 मार्च 2014 को शक्तिनगर स्थित सामायिक स्वाध्याय भवन पधारे। श्रद्धेय श्री दर्शनमुनिजी के भी घुटनों में तकलीफ है, किन्तु वे भी उपाध्यायप्रवर के साथ विहार कर जोधपुर पधार गए हैं।

पूज्य उपाध्यायप्रवर आदि ठाणा 5 तथा **साध्वीप्रमुखा, शासनप्रभाविका महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.**, व्याख्यात्री महासती श्री रतनकंवर जी म.सा., व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा. आदि ठाणा 20 के सान्निध्य में शक्तिनगर में स्थित सामायिक-स्वाध्याय भवन के सभागार में जिनशासन गौरव पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 76 वां जन्मदिवस तप-त्यागपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर संत मण्डल एवं साध्वी मण्डल ने पूज्य आचार्यप्रवर का गुणानुवाद किया। **श्रद्धेय श्री जितेन्द्रमुनि जी म.सा.** ने आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की शिक्षाओं तथा पूज्य आचार्यप्रवर के गुणों पर प्रकाश डाला। **श्रद्धेय श्री दर्शनमुनि जी म.सा.** ने पूज्य आचार्यप्रवर के चेन्नई चातुर्मास की घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके महान् अतिशय पर प्रकाश डाला। **महासती श्री मुदितप्रभा जी म.सा.** ने गुरु पद का सांगोपांग विवेचन करते हुए पूज्य आचार्यप्रवर का गुणानुवाद किया तथा आह्वान किया कि संघ के उन्नयन में हमें गुरुदेव का सहयोग करना चाहिए। **महासती श्री विनीतप्रभा जी म.सा.** ने आदि-तीर्थंकर ऋषभदेव के जन्म कल्याणक, आचार्यप्रवर के जन्मदिवस तथा उपाध्यायप्रवर के आगमन इन तीनों

प्रसंगों पर भावपूर्ण विचार व्यक्त किए तथा गुरुदेव के दीर्घ आयुष्य एवं स्वास्थ्य की मंगल कामना की। **मधुर व्याख्यानी श्री गौतममुनि जी म.सा.** ने प्रभु आदिनाथ, तीर्थंकर शान्तिनाथ की स्तुति की तथा तीर्थंकर प्रभु के अतिशयों के साथ पूज्य आचार्यप्रवर के विशिष्ट गुणों का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि प्रारम्भ से ही संघनायक आचार्य श्री हस्ती के प्रति आपका समर्पण रहा तथा आप संघहित में निरन्तर पुरुषार्थ करते रहते हैं। **पूज्य उपाध्यायप्रवर** ने आदिनाथ का गुणगान करने के साथ पूज्य आचार्यप्रवर को योग्य गुरु का योग्य शिष्य बताया।

इस अवसर पर 100 से 125 दया-संवर की आराधना हुई। आयंबिल एवं उपवास की साधना हुई। 5 एवं 3 सामूहिक सामायिक की लगभग 100 से 150 ने आराधना की। गुणानुवाद सभा में लगभग 500 की उल्लेखनीय उपस्थिति रही।

30 मार्च को जोधपुर संघ ने चातुर्मास हेतु विनति प्रस्तुत की, जिस पर उपाध्यायप्रवर की स्वीकृति का संकेत मिलने पर लिखित में विनति पत्र पूज्य आचार्यप्रवर की सेवा में प्रेषित किया गया है।

संवत् 2071 के चातुर्मासों की घोषणा

आगममर्मज्ञ जिनशासन गौरव, परमपूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. ने चैत्र कृष्णा अष्टमी 24 मार्च, 2014 को सुमेरगंजमण्डी (जिला-बूंदी) की प्रवचन-सभा में तथा उसके पश्चात् साधु मर्यादा में रखने योग्य आगारों के साथ विक्रम संवत् 2071 के निम्नांकित चातुर्मासों की घोषणा की है-

1. **रामपुरा बाजार, कोटा-** परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्रजी म.सा. आदि ठाणा
2. **जोधपुर-** साध्वीप्रमुखा महासती श्री मैनासुन्दरी जी म.सा.आदि ठाणा
3. **आदर्शनगर, अजमेर-** व्याख्यात्री महासती श्री मनोहरकंवर जी म.सा.आदि ठाणा
4. **जयपुर-** व्याख्यात्री महासती श्री सोहनकंवर जी म.सा. आदि ठाणा
5. **शाहीबाग, अहमदाबाद-** व्याख्यात्री महासती श्री इन्दुबाला जी म.सा.आदि ठाणा
6. **बैंगलोर (कर्नाटक)-** व्याख्यात्री महासती श्री ज्ञानलताजी म.सा. आदि ठाणा
7. **हैदराबाद-** व्याख्यात्री महासती श्री चारित्रलता जी म.सा. आदि ठाणा
8. **सतारा (महाराष्ट्र)-** व्याख्यात्री महासती श्री निःशल्यवती जी म.सा. आदि ठाणा
9. **आनन्दपुरी, कानपुर-** व्याख्यात्री महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म.सा. आदि ठाणा
10. **शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा-** व्याख्यात्री महासती श्री रुचिता जी म.सा. आदि ठाणा
11. **सोजतरोड-** क्षेत्र खाली नहीं रहेगा

02 मई, 2014 को अक्षय तृतीया देई (जिला-बून्दी) में

जिनशासन गौरव, परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर पूज्य 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. ने अक्षय तृतीया हेतु दिनांक 02 मई, 2014 को देई (जिला-बून्दी) विराजने की स्वीकृति देई श्रीसंघ को प्रदान की है। इससे देई श्रीसंघ क्षेत्र हर्षित एवं प्रमुदित है। तप और दान के विशिष्ट पर्व अक्षय तृतीया पर आचार्यप्रवर प्रभृति संत-सतीवृन्द के मुखारविन्द से तप और दान का माहात्म्य श्रवण कर तप-साधकों के साथ अनेक श्रद्धालुजन नवीन व्रत-प्रत्याख्यान अंगीकार करेंगे। सभी एकान्तर तप-साधक अपने नाम एवं अपने साथ आने वाले सदस्यों की संख्या का उल्लेख कर पूर्ण जानकारी एवं अपने पधारने की सूचना संघ के प्रधान कार्यालय घोड़ों के चौक, जोधपुर ई-मेल-absjrhssangh@yahoo.com फोन-0291-2636763/2641445 पर अथवा श्री मानेन्द्रजी ओस्तवाल, संयुक्त महामंत्री, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ को 94141-32521 पर एवं देई के सम्पर्क सूत्र पर भिजवाने का श्रम करावें। **सम्पर्क सूत्रः-** श्री बाबूलालजी जैन, अध्यक्ष, श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, द्वारा-अग्रवाल साड़ी एम्पोरियम, पोस्ट-देई-323802 जिला-बून्दी (राज.) फोन-07437-255860/94149-63429 श्री रामपालजी गोयल-मंत्री 07437-225856/97996-96642, श्री ताराचन्दजी जैन-97846-74407, श्री नन्दकिशोरजी जैन-95300-86665, श्री पदमचन्दजी जैन (बंसोली वाले) 99292-07109

आवागमन के साधन-

1. नजदीक का रेलवे स्टेशन सवाईमाधोपुर एवं कोटा है। सवाईमाधोपुर से देई 70 किमी. एवं कोटा से देई 80 किमी. दूरी पर स्थित है। सवाईमाधोपुर से वाया उनियारा होते हुए तथा कोटा से वाया बून्दी होते हुए बस सेवा उपलब्ध है।
2. नजदीक का रेलवे स्टेशन इन्द्रगढ़ है, परन्तु यहाँ कुछ गाड़ियों का ही ठहराव है। इन्द्रगढ़ से देई 35 किमी. दूरी पर स्थित है। यहाँ से साधन बराबर उपलब्ध नहीं है, लेकिन व्यक्तिगत वाहन किराये से उपलब्ध है।
3. बून्दी से देई 50 किमी. की दूरी पर स्थित है। यहाँ से प्रति घंटे बस सेवा उपलब्ध है।

स्वाध्यायी गुणवत्ता अभिवर्द्धन शिविर जोधपुर में

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ, जोधपुर द्वारा 23 मई से 25 मई 2014 को जोधपुर में वरिष्ठ स्वाध्यायियों हेतु स्वाध्यायी गुणवत्ता अभिवर्द्धन शिविर का आयोजन किया जा रहा है। उक्त शिविर में वरिष्ठ प्रतिभावान एवं कुशल प्रशिक्षक तैयार करने हेतु चयनित स्वाध्यायियों को ही आमंत्रित किया गया है। इस शिविर में तत्त्वार्थ सूत्र का विस्तृत एवं रोचक विवेचन विद्वान् प्रशिक्षकों द्वारा कराया जायेगा। *-कुशलचन्द गोटेवाला, संयोजक*

जोधपुर में ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर 16 मई से

श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जोधपुर द्वारा बालक-बालिकाओं में संस्कारों के बीजारोपण हेतु विगत 20 वर्षों से ग्रीष्मकाल में नैतिक एवं धार्मिक शिक्षण शिविर आयोजित किया जाता है। इस वर्ष भी यह शिविर 16 मई से 1 जून तक आयोजित किया जायेगा।

आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड की परीक्षा 20 जुलाई को

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, घोड़ों का चौक, जोधपुर द्वारा कक्षा 1 से 12 तक के पाठ्यक्रम की आगामी परीक्षा 20 जुलाई, 2014, रविवार को दोपहर 12.30 से 3.30 बजे तक आयोजित की जायेगी। उक्त परीक्षा में भाग लेने हेतु आवेदन पत्र जमा कराने की अन्तिम तिथि 20 जून 2014 है। परीक्षार्थियों की सुविधा हेतु शिक्षण बोर्ड की ओर से कक्षा 1 से 3 तक गुजराती भाषा में तथा कक्षा 1 से 2 तक अंग्रेजी भाषा में भी पुस्तकें उपलब्ध हैं। आवेदन-पत्र, पुस्तकों आदि के लिए तथा परीक्षा सम्बन्धी अन्य जानकारी के लिए सम्पर्क करें- सुरेश बी. चोरडिया,संयोजक-9444028841, नवरतन गिड़िया, सचिव-9414100759, धर्मचन्द जैन, रजिस्ट्रार-9351589694, शिक्षण बोर्ड कार्यालय, जोधपुर-0291-2630490

अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों का राष्ट्रीय शिविर

आचार्य हस्ती अहिंसा शोध संस्थान एवं अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में 19 एवं 20 अप्रेल, 2014 को जोधपुर से लगभग 30 किमी दूर बिरामी ग्राम स्थित भुवाल माता मंदिर परिसर में दो दिवसीय औषध विहीन अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों एवं शिवाम्बु चिकित्सा का छट्ठा राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है।

सम्मेलन में अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त एवं पिरामिड वास्तु के शोधकर्ता प्रोफेसर डॉ. जितेन भट्ट, सुजोक अन्तरराष्ट्रीय अकादमी भारत शाखा के उपाध्यक्ष श्री अशोक जी कोठारी, अन्तरराष्ट्रीय विश्व गुरु ध्यान योग संस्थान, ऋषिकेश के संचालक संत श्री हरि, जय भगवान एक्यूप्रेशर अन्तरराष्ट्रीय आश्रम, गांधीधाम के संचालक श्री मोहन भारती जी, व्यक्ति के बालों के माध्यम से कम्प्यूटर द्वारा दूरस्थ निदान एवं चिकित्सा करने वाले स्वास्तिक हेल्थ केयर सेण्टर, वडोदरा के निदेशक श्री गिरधर भाई, शिवाम्बु द्वारा असाध्य रोगों का 100 शय्या वाला चिकित्सालय संचालन करने वाले डॉ. नितिन पाटिल एवं डॉ. सारंग पाटिल-कोल्हापुर, शिवाम्बु द्वारा विभिन्न प्रकार के कैंसर रोगियों का सफलतापूर्वक उपचार करने वाले श्री जगदीश आर. बुरानी-बैंगलोर, गत 60 वर्षों से शिवाम्बु आन्दोलन से जुड़े अखिल भारतीय शिवाम्बु संस्थान के अध्यक्ष एवं संरक्षक श्री विनुभाई जी. गांधी एवं श्री जगदीश जी शाह जैसे विशिष्ट

विशेषज्ञों का सान्निध्य प्राप्त होगा। सम्मेलन में देश भर से आधुनिक चिकित्सा से जुड़े चिकित्सक, आयुर्वेद, हौम्योपेथी, प्राकृतिक, योग, ध्यान, एक्यूप्रेशर, सुजोक, चुम्बक आदि के चिकित्सक बड़ी संख्या में भाग ले रहे हैं। साथ ही Golden Fountain Urine Therapy Foundation, Kerala, सुलभ स्वास्थ्य इंटरनेशनल-आगरा, शिवाम्बु संशोधन मण्डल-नाशिक, अमरावती, वडोदरा से बड़ी संख्या में प्रतिनिधि पधार रहे हैं। शिविर सम्बन्धी जानकारी हेतु website: www.chordiahealthzone.in अथवा आचार्य हस्ती शोध संस्थान के पदाधिकारियों से सम्पर्क किया जा सकता है। **सम्पर्क सूत्र**- श्री चंचलमल चोरड़िया (प्रबन्धक ट्रस्टी), फोनः 0291-2621454, मोबाइल-094141-34606, Email- cmchordia.jodhpur@gmail.com, श्री नवरतन डागा (संयुक्त प्रबन्धक ट्रस्टी)-98280-32215

आगम अध्येता 'उपासकदशांग सूत्र' प्रतियोगिता

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल द्वारा आयोजित आगम अध्येता उपासकदशांग सूत्र के **मूल्यांकन प्रश्न-पत्र भिजवाने की अंतिम तिथि 31 मार्च 2014 से बढ़ाकर 30 अप्रेल 2014 कर दी गई है** तथा समापक परीक्षा स्थानीय केन्द्रों पर 29 जून 2014 को ली जायेगी।

-पूर्णिमा लोढ़ा, अध्यक्ष

संक्षिप्त-समाचार

जोधपुर- श्री जैन रत्न युवक परिषद्, जोधपुर द्वारा 23 मार्च 2014 को जोधपुर शहर में स्थित वर्द्धमान हॉस्पिटल में विशाल रक्तदान शिविर का आयोजन किया गया। शिविर में 85 रक्तदाताओं ने रक्तदान कर सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। रक्तदान करने वाले युवा बंधुओं को परिषद् द्वारा प्रमाण-पत्र प्रदान किया गया।

मेड़ता शहर- श्री जयमल जैन छात्रावास, मेड़ताशहर में आगामी सत्र 2014-15 हेतु प्रवेश प्रारम्भ कर दिया गया है। छात्रावास में कम्प्यूटर प्रशिक्षण, इण्टरनेट, शारीरिक विकास हेतु नियमित व्यायाम, वाचनालय, पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार आदि सुविधाएँ मात्र 550/- रुपये मासिक पर उपलब्ध है। निर्धन छात्रों हेतु सभी सुविधाएँ निःशुल्क भी उपलब्ध हैं। **सम्पर्क सूत्र**- मंत्री, श्री जयमल जैन छात्रावास, पुराने राजकीय चिकित्सालय के पास, मेड़ताशहर-341510, जिला-नागौर (राज.), फोनः 01590-231160, 9414119283, 9660529022, ईमेल- jaimaljainhostal@gmail.com

बैंगलोर- श्रमण संघीय उपाध्याय श्री रमेशमुनि जी म.सा., उपप्रवर्तक डॉ. राजेन्द्रमुनि जी

म.सा. के सान्निध्य में 18 मई, 2014 को मुमुक्षु सुमन बागरेचा सुपुत्री श्री लूणचन्द जी बागरेचा, कल्याणपुर की भागवती दीक्षा सम्पन्न होगी।

चेन्नई- चेन्नई संघ द्वारा 16 मार्च 2014 को चातुर्मासिक पक्खी के अवसर पर 'कषाय विजय' विषयक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। मुम्बई के श्री हर्ष जी जैन ने अपने वक्तव्य में बताया कि धर्म का पालन करते हुए सहज में जीवन कैसे जीया जाए, क्रोध, मान, माया एवं लोभ कषाय को कैसे कम किया जाए। संगोष्ठी में लगभग 300-350 श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति रही। कार्यक्रम का संचालन श्री ज्ञानचन्द जी बाघमार ने किया। इस अवसर पर अ.भा.श्री जैन रत्न बहू बालिका मण्डल की अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा जी बोहरा के नेतृत्व में क्षेत्रीय स्तर पर 'बहू-बालिका मण्डल, चेन्नई शाखा' का गठन किया गया, जिसमें शाखा संचालन का प्रभार श्रीमती विनीता जी सुराणा को सौंपा गया।

बधाई

श्रवणबेलगोला- बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोला द्वारा प्रवर्तित प्राकृत अध्ययन के क्षेत्र में दिया जाने वाला प्राकृत ज्ञानभारती अन्तरराष्ट्रीय अवार्ड 2012 प्राकृत के लब्ध प्रतिष्ठ मनीषी **प्रोफेसर डॉ. कमलचन्द सोगानी, जयपुर** को 2013 को एवं 2013 का **प्रोफेसर (डॉ.) रामप्रकाश पोद्दार, पूना** को प्रदान करने की घोषणा की गई है। विगत 10 वर्षों में प्राकृत का यह प्रतिष्ठित अवार्ड अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, भारत, स्विट्जरलैंड के आठ प्राकृत मनीषियों को समर्पित किया जा चुका है।

जोधपुर- प्रो. (डॉ.) सोहनराज तातेड़ को "ऑल इण्डिया इकॉनोमी सर्वे एवार्ड कॉन्सिल" नई दिल्ली द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा के लिये 'शाइनिंग इमेज ऑफ इण्डिया' एवं उनके द्वारा लम्बे अर्से से दी जा रही समाज सेवा के लिये 'सेवाचक्र पुरस्कार' से नवाजा गया।

श्रद्धांजलि

मेड़तासिटी- धर्मनिष्ठ मनस्वी सुश्रावक श्री श्रीचन्द जी डोसी का 8 मार्च, 2014 को

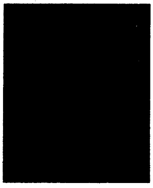

समाधिमरण हो गया। आप नियमित सामायिक-स्वाध्याय की साधना करते थे। आपने अपने जीवन में रात्रि-भोजन त्याग, पर्व-तिथियों पर हरी सब्जी व जमीकन्द का त्याग, आजीवन शीलव्रत का खंद जैसे अनेक प्रत्याख्यान ग्रहण कर रखे थे। मेड़ता पधारने वाले संत-सतीवृन्द के प्रति आपने बहुत अहोभाव रखा। सम्प्रदायवाद से परे उन्होंने समूचे जिनशासन

की सेवा का अनूठा आदर्श उपस्थित किया। जीवन भर नियमित साधना-आराधना करने के कारण ही जीवन के संध्याकाल में संथारा करने का योग बना। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री हस्तीमल जी डोसी अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के उपाध्यक्ष हैं तथा सम्प्रति श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, मेड़ता के मंत्री के रूप में अपनी महनीय सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

कुम्बकोणम् (चेन्नई)- उदारमना तपाराधिका सुश्राविका श्रीमती सुशीला जी धर्मपत्नी श्री

गौतमचन्द जी संकलेचा का 6 मार्च, 2014 को 62 वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। आपकी रत्नसंघ के संत-सतीवृन्द के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति थी। आपने आचार्यश्री हस्तीमलजी म.सा. के मद्रास चातुर्मास के समय 15 उपवास एवं आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के मद्रास चातुर्मास के समय 131 दिन लगातार एकासना की तपस्या की तथा कई वर्षीतप एवं 11, 9,8,5 व कई तेले की तपस्याएँ कीं। आपने पिछले कुछ वर्षों से रात्रि भोजन, जमीकंद, कच्चे पानी पीने का त्याग व आचार्य भगवन् के जोधपुर चातुर्मास में शीलव्रत के प्रत्याख्यान किए। पिछले 10 सालों से दीपावली एवं पर्युषण पर्व पर आचार्य भगवन्त की सेवा में धर्माराधन-तपाराधन करती थीं।

मुम्बई- धर्मनिष्ठ सेवाभावी गुरुभक्त सुश्रावक श्री राजेन्द्रकुमार जी भण्डारी सुपुत्र श्री

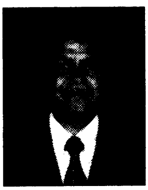

अमोलकचन्द जी भण्डारी (पीपाड़शहर निवासी) का 55 वर्ष की वय में 26 मार्च, 2014 को लोणावाला में हृदयाघात से आकस्मिक स्वर्गगमन हो गया। नित्य सामायिक-स्वाध्याय, धर्माराधना से आपका जीवन अलंकृत था। आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के मुम्बई चातुर्मास में आपने भोजनशाला का महत्त्वपूर्ण दायित्व सम्हाला। प्रत्येक पर्युषण में उनका यह योगदान प्राप्त हुआ। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती देवबाला जी भण्डारी एक निष्ठावान एवं संघ सेवा में समर्पित श्राविका हैं।

चेन्नई- तमिलनाडु के पूर्व पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) तथा जैनविद्या शोध प्रतिष्ठान

(रिसर्च फाउण्डेशन फॉर जैनोलोजी) एवं जैन विद्याश्रम के चेयरमैन श्री एस.श्रीपाल का 76 वर्ष की वय में 25 मार्च, 2014 को निधन हो गया। आप ईमानदार, बहादुर और कर्मठ पुलिस अधिकारी के रूप में प्रख्यात थे। आपने अपने कार्यकाल में अपराधों की रोकथाम के लिए स्मरणीय भूमिका निभाई। आप भारत सरकार द्वारा पुलिस मेडल से सम्मानित हुए। आप तमिल साहित्य एवं जैनदर्शन के विद्वान् भी थे। उन्होंने 'जैन इंस्क्रिप्शंस इन तमिलनाडु'

शोधग्रन्थ तैयार किया था। आप ने तत्त्वार्थ सूत्र का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।

जयपुर- सुश्रावक श्री जौहरीलाल जी खीचा, ब्यावर का 90 वर्ष की वय में 03 मार्च,

2014 को स्वर्गवास हो गया। वे सर्वोदयी विचारधारा के कर्मठ, सत्यवादी, ईमानदार, अहिंसक एवं गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक थे। विपश्यना ध्यान के वरिष्ठ साधक के रूप में उन्होंने 25 से अधिक विपश्यना ध्यान-शिविर किये। वे जैनदर्शन के ज्ञाता होने के साथ प्राकृतिक चिकित्सा, योग, प्राणायाम में गहरी रुचि रखते थे। वसीयत के अनुसार उनकी देह का दान एस.एम.एस. मेडिकल कॉलेज, जयपुर को कर दिया गया। उनके पीछे किसी भी प्रकार की रूढिवादी परम्परा के रूप में घर में रोना-पीटना तथा भोज आदि नहीं किया गया। आप अपने पीछे सुपुत्र डॉ. निरंजन खीचा (सेवानिवृत्त, आर.ए.एस.) एवं सुपुत्रियों का सुशिक्षित एवं धर्मनिष्ठ परिवार छोड़कर गए हैं।

जोधपुर- श्रद्धानिष्ठ, सरलमना, सुश्राविका श्रीमती बदनकंवर जी सिंघवी धर्मपत्नी स्व.

श्री गणेशराज सिंघवी का 11 मार्च, 2014 को संथारापूर्वक 98 वर्ष की आयु में देवलोकगमन हो गया। आप रात्रिभोजन त्याग (चौविहार) के साथ नियमित रूप से नवकार मंत्र का जाप, तप आराधना एवं मौनव्रत का पालन करती थीं। आपने सदा समता, अहिंसा एवं वीतरागता को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। आप अपने पीछे सुयोग्य धर्मनिष्ठ चार पुत्रों एवं दस पौत्रों का संस्कारित एवं धर्मनिष्ठ परिवार छोड़कर गयी हैं।

जयपुर- महातपस्विनी, सुश्राविका श्रीमती कमलादेवी जी करनावट धर्मपत्नी स्व. श्री चौथमल

जी करनावट का 90 वर्ष की अवस्था में 23 जनवरी, 2014 को स्वर्गवास हो गया। आप सादगीमय जीवन व समता की प्रतिमूर्ति थीं। आपने अपने जीवन में लगातार 6 वर्षीतप, 1 मासक्षपण, 20 स्थानक की ओलीजी, प्रति रविवार को आयम्बिल तथा अनेक प्रकार की तपस्याएँ की थी।

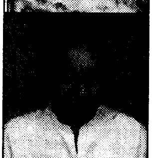

जयपुर- सुश्रावक श्री राजेन्द्रसिंह जी भण्डारी सुपुत्र स्व. श्री सरदारसिंह जी भण्डारी का 67 वर्ष की उम्र में 6 फरवरी 2014 को स्वर्गवास हो गया। आप नियमित सामायिक, स्वाध्याय करते थे एवं रत्नसंघ व गुरु भगवंतों के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा थी। मरणोपरान्त आपके नेत्रदान किए गये।

कोटा- कर्तव्यनिष्ठ श्री एल.सी.कोठारी जी का 93 वर्ष की वय में 25 फरवरी, 2014 को स्वर्गगमन हो गया। आप भोपाल श्री संघ के स्तम्भ सदस्य एवं वर्षों तक ट्रस्टी, संरक्षक तथा अध्यक्ष रहे।

कोटा- तपसाधिका सुश्राविका श्रीमती शोभादेवी जी लुंकड़ धर्मपत्नी स्व. श्री बंशीलाल

जी लुंकड़ का 82 वर्ष की वय में 6 मार्च, 2014 को देवलोकगमन हो गया। आपने अपने जीवन में उपवास, बेला, तेला, अठाई, ज्ञानपंचमी, मौनी ग्यारस आदि की तप आराधना की थी। आपने दीपावली के तीनों दिन एवं पयुर्षण के आठों दिन स्थानक में संवर-पौषध के साथ ही व्यतीत करती थीं। 45 वर्ष की आयु से ही आपके ब्रह्मचर्य व्रत के प्रत्याख्यान थे। आप संत-सतीवृन्द की सेवा शुश्रूषा में सदैव आगे रहती थीं।

यवतमाल- सुश्रावक श्री पूनमचन्द जी नेमचन्द जी दर्डा की 80 वर्ष की आयु में संलेखना

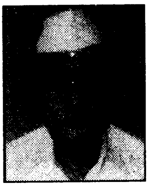

संथारा के साथ 12 फरवरी, 2014 को पंडितमरण हो गया। आप नित्य सामायिक करते थे तथा 65 वर्षों से आपके रात्रि भोजन का त्याग था। जमीकंद, बड़ी स्नान, लीलोती की मर्यादा थी। आपने वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ के अध्यक्ष पद का भार 10 वर्षों तक सुचारु रूप से संभाला था तथा पर्युषण पर्व में भी स्वाध्यायी सेवा दी थी।

चेन्नई- धर्म में अनुरक्त सुश्राविका श्रीमती मैना कंवर जी धर्मपत्नी श्री उमरावमल जी लोढ़ा का

26 नवम्बर, 2013 को अजमेर में देवलोकगमन हो गया। आप नित्य पाँच सामायिक एवं संवर की आराधना करती थीं। रात्रिभोजन के त्याग के साथ बारह व्रतों का भी आप पालन करती थीं। आपके सुपुत्र श्री सुभाष जी लोढ़ा, चेन्नई रत्न संघ में तथा श्री मानमल जी लोढ़ा अजमेर संघ में सक्रिय हैं।

इन्दौर- सुश्राविका श्रीमती बदामबाई जी जैन धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीनारायण जी जैन का 85 वर्ष की अवस्था में 25 फरवरी, 2014 को परलोकगमन हो गया। इनके द्वारा अनेक वर्षों तक वर्षीतप की तपस्याएँ की गयीं, 5 वर्ष तक आयम्बिल की तपस्या, मासखमण, अनेक बार ग्यारह दिन, अठाई तप एवं तेले की तपस्याएँ की गयीं।

जबलपुर- सुश्रावक श्री सम्पतलाल जी बागमार का 24 फरवरी, 2014 को देवलोकगमन हो गया। आप धर्मनिष्ठ एवं श्रद्धानिष्ठ श्रावकरत्न थे।

उपर्युक्त दिवंगत आत्माओं के प्रति सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जिनवाणी-परिवार तथा अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके परिवारजनों के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करते हैं।

परिणाम

'स्वप्निका' प्रतियोगिता परिणाम घोषित

गुरुद्वय आचार्य श्री हीराचन्द्र-उपाध्यायश्री मानचन्द्र दीक्षा अर्द्धशती वर्ष (4 मई 2012 से 8 नवम्बर 2013) के अन्तर्गत स्वप्निका पुस्तिका के माध्यम से तप-त्याग एवं व्रत प्रत्याख्यानों का एक अभियान चलाया गया। 21 अक्टूबर 2012 को स्वप्निका पुस्तिका का जयपुर में विमोचन हुआ तथा संयोजक श्री नमन मेहता के संयोजन में देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्वप्निका यात्रा प्रारम्भ हुई। परम श्रद्धेय उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. के दीक्षा अर्द्धशती वर्ष की पूर्णाहुति पर 23 मई, 2013 को प्रथम चरण में "स्वप्निका खुली पुस्तिका प्रतियोगिता" आयोजित की गई, जिसमें लगभग 2300 परीक्षार्थियों ने भाग लिया। इस परीक्षा में निम्नांकित विजेता रहे-

प्रथम परीक्षा (23 मई, 2013 का परिणाम)

प्रथम-	सुरुचि जैन-दिल्ली	11000/- रुपये
द्वितीय-	प्रमिला बोथरा-जयपुर	9000/-रुपये
तृतीय-	नीरा भण्डारी-ब्यावर	5000/- रुपये

पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के दीक्षा अर्द्धशती वर्ष की पूर्णाहुति के उपलक्ष्य में 10 नवम्बर 2013 को द्वितीय चरण में स्वप्निका की मुख्य लिखित परीक्षा बैंकाक सहित सम्पूर्ण भारत के 130 क्षेत्रों में आयोजित हुई।

इस मुख्य परीक्षा में हजारों परीक्षार्थियों ने भाग लिया। इस परीक्षा की पुस्तिकाओं का मूल्यांकन तप-त्याग के आधार को सम्मिलित करते हुए योग्य परीक्षकों द्वारा किया गया।

चैत्र कृष्णा अष्टमी, सोमवार, 24 मार्च, 2014 को पूज्य आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के 76 वें जन्मदिवस के अवसर पर सुमेरगंज मण्डी में मूल्यांकन समिति के प्रमुख, पूर्व न्यायाधिपति श्री जसराज जी चौपड़ा ने परिणामों की घोषणा की। प्रवचन-सभा के पश्चात् आयोजित समारोह के मंच पर संघ-संरक्षक मण्डल के संयोजक श्री मोफतराज जी मुणोत-मुम्बई, शासनसेवा समिति के संयोजक श्री रतनलाल जी बाफना-जलगांव, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ के अध्यक्ष श्री ज्ञानेन्द्र जी बाफना-जोधपुर, स्वप्निका समिति के निदेशक श्री सुमेरसिंह जी बोथरा-जयपुर, अखिल भारतीय श्री जैन रत्न श्राविका मण्डल की अध्यक्ष श्रीमती पूर्णिमा जी लोढ़ा, जयपुर सहित अनेक

पदाधिकारी उपस्थित थे। स्वप्निका प्रतियोगिता समिति के श्री सुमेरसिंह जी बोथरा ने प्रतियोगिता कार्यक्रम की सम्पूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सहयोगी संस्थाओं, पदाधिकारियों, कार्यकर्ताओं और प्रतिभागियों का आभार व्यक्त किया। उन्होंने बताया कि 14 स्वप्नों के आधार पर तैयार की गई इस पुस्तिका के माध्यम से हजारों श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत-नियम एवं प्रत्याख्यान कर साधना में चरण बढ़ाएँ हैं। प्रत्याख्यान ग्रहण कर श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी दिनचर्या को नियमित, जीवन को नियोजित और आत्मा को पापों से निवृत्त करते हुए कर्म-निर्जरा का लाभ प्राप्त किया है।

अखिल भारतीय स्तर पर 64 पुरस्कार घोषित किए गए तथा स्थानीय स्तर पर जयपुर संभाग से 51, जोधपुर संभाग से 26, पोरवाल संभाग से 14 तथा तमिलनाडु संभाग से 19 पुरस्कार घोषित किए गए। स्वप्निका प्रतियोगिता के इस प्रकार 174 विजेता रहे। समागत विजेताओं को समारोह में पुरस्कृत किया गया। घोषित परिणाम इस प्रकार है-

द्वितीय परीक्षा (10 नवम्बर, 2013 का परिणाम)-

स्वप्निका समिति की ओर से पुरस्कृत प्रतिभागी

प्रथम- अविस्मरणीय, हीरक पदक- श्रीमती प्रमिला बोथरा-जयपुर, 251000/-रुपये

द्वितीय- अद्वितीय, स्वर्ण पदक- सुश्री रिंकी जैन-अलीगढ़-रामपुरा, 171000/-रुपये

तृतीय- अलौकिक, रजत पदक- श्रीमती प्रतिभा जैन-जयपुर, 131000/-रुपये

अचम्भित, कांस्य पदक (11 प्रत्येक 11000/- रुपये)- शिप्रा मोदी-ब्यावर, बिन्दु मेहता-जोधपुर, डिम्पल बेताला-सेदापेठ, सुरुचि जैन-दिल्ली, शशि भण्डारी-मुम्बई, बबीता बाफना-जलगांव, उषा जैन-इन्द्रगढ़, नेहा भण्डारी-पीपाड़सिटी, पायल मेहता-ब्यावर, रेखा जैन-बजरिया, पंकज सेठिया-धनारीकलां।

अविराम, फ्रेम शील्ड (50 प्रत्येक 5000/-रुपये)- निशा आर.-वेस्ट सेदापेठ, अदिति जैन-अलीगढ़-रामपुरा, निशा जैन-भरतपुर, रिंकी गाँधी-जोधपुर, मंजु भण्डारी-ब्यावर, सुखमल कोठारी-भीलवाड़ा, मीनाक्षी मेहता-ब्यावर, कविता बांठिया-जोधपुर, मोनिका सुराणा-ब्यावर, सीमा मेहता-जोधपुर, कविता चौधरी-अजमेर, शर्मिला धोका-मैसूर, खुशी कटारिया-पीपाड़सिटी, निशा जैन-अलीगढ़-रामपुरा, जेनिता मेहता-ब्यावर, माधुरी जैन-कोटा, रीतिमा जैन-दिल्ली, एकता डोसी-अजमेर, मीरा जैन-सवाईमाधोपुर, ममता लुंकड़-भोपालगढ़, रश्मि जैन-सवाईमाधोपुर, नितिन जैन-

कुश्तला, मयंक सालेचा-जोधपुर, कमलादेवी सेठिया-ब्यावर, सीमा मोहनोत-अहमदनगर, विजया मुणोत-जलगांव, किरण कोठारी-बोदवड, स्मिता बुरड़-शिरपुर, विजया मल्हारा-जलगांव, पूजा गुन्देचा-बैंगलोर, सीमा पारख-जलगांव, दीपिका चौपड़ा-बालोतरा, पूर्णिमा चोरडिया-भडगांव, स्वाति जैन-अलीगढ़-रामपुरा, रेखा तलसेरा-बैंगलोर, शीतल छाजेड़-करही, शोभा सालेचा-हुबली, प्रतीक्षा सालेचा-जोधपुर, श्वेता बुरड़-शिरपुर, कुमकुम जैन-सवाईमाधोपुर, इन्दु कमलेश जैन-मुम्बई, साधना छाजेड़-करही, लीला गन्ना-मैसूर, अंजलि जैन-नवी मुम्बई, मंजु जैन-पीपाड़सिटी, ईशा जैन-सवाईमाधोपुर, मनीषा जैन-जयपुर, स्वाति कोठारी-बुलढाणा, पार्श्वकुमार जैन-नवसारी, अनिल जैन-कोटा।

स्थानीय श्रावकों द्वारा सम्भागीय स्तर पर पुरस्कृत 110 प्रतिभागी

(1) जयपुर संभाग (51)- श्रुति बाफना-मानसरोवर, स्वाति पारख-महावीर नगर, प्रमिला मेहता-दूदू, रेणु जैन-प्रतापनगर, दीपिका जैन-महावीर नगर, ज्योति मेहता-दूदू, मीनाक्षी जैन-प्रतापनगर, सीमा जैन-मानसरोवर, नीलम जैन-प्रतापनगर, कुसुम जैन-प्रतापनगर, रिंकू जैन-प्रतापनगर, डिम्पल जैन-महावीर नगर, चन्द्रा हीरावत-महावीर नगर, पुष्पलता जैन-महावीर नगर, हेमलता जैन-प्रतापनगर, पिंकी जैन-12 गणगौर, आभा जैन-महावीर नगर, सायर संचेती-जवाहरनगर, पूजा हिंगड़-महावीर नगर, रिंकू जैन-मानसरोवर, लोकेश जैन-महावीर नगर, ज्योति जैन-महावीर नगर, योगिता जैन-मानसरोवर, शीलू हीरावत-12 गणगौर, मधु जैन-मानसरोवर, सपना जैन-12 गणगौर, चन्द्रप्रभा लोढ़ा-महावीर नगर, सरोज नाहटा-12 गणगौर, आशा अग्रवाल-महावीर नगर, गायत्री जैन-मानसरोवर, प्रिंयका चौपड़ा-जवाहरनगर, दीपिका डागा-12 गणगौर, विमला लोढ़ा-12 गणगौर, महिमा बैद-महावीर नगर, पिंकी जैन-मानसरोवर, अक्षय जैन-सिद्धान्तशाला, नेहा जैन-प्रतापनगर, श्वेता कोठारी-महावीर नगर, महेन्द्र जैन-12 गणगौर, सुधीर जैन-प्रतापनगर, नेहा कोचर-महावीरनगर, बाबूलाल जैन-महावीर नगर, अनुष्का जैन-प्रतापनगर, रिया बाबेल-जवाहरनगर, सुदर्शना जैन-मानसरोवर, अनिता जैन-मानसरोवर, तृप्ति जैन-महावीरनगर, मधु चोरडिया-महावीर नगर, सीमा जैन-मानसरोवर, वन्दना जैन-मानसरोवर, ऋचा डागा-12 गणगौर।

पुरस्कार प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री प्रमोद जी लोढ़ा, जयपुर (राज.), फोनः-98290-51083

(2) जोधपुर संभाग (26)- रक्षिता मेहता-शक्तिनगर, रेणु सर्राफ-देवनगर, दीप्ति मेहता-नेहरूपार्क, श्रीपाल रांका-शक्तिनगर, दीपिका कांकरिया-शक्तिनगर, रिंकू

संचेती-शक्तिनगर, स्वीटी कवाड़-पावटा, आकांक्षा सिंघवी-चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, वैभव मेहता-घोड़ों का चौक, शर्मिला भण्डारी-शक्तिनगर, भाग्यवंती तातेड़-शक्तिनगर, दिव्या सालेचा-चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, मनीषा भण्डारी-चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, मनीषा चोरडिया-शक्तिनगर, रितेश सिंघवी-शक्तिनगर, अनोप बाघमार-कोसाना, लवीना चौपड़ा-पावटा, प्रिंयका बालड़-शक्तिनगर, कल्पना छाजेड़-नेहरूपार्क, मंजू पटवा-नेहरूपार्क, बुलबुल भण्डारी-शक्तिनगर, संध्या सिंघवी-चौपासनी हाउसिंग बोर्ड, खुशबू सेठिया-शक्तिनगर, नीलम कांकरिया-शक्तिनगर, सुशीला कोठारी-शक्तिनगर, कविता सालेचा-गुलाबनगर।

पुरस्कार प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री हर्षवर्धन जी ललवानी-098281-97000

(3) तमिलनाडु संभाग (19)- सुचिता बोहरा-पेराम्बुर, जयश्री-उतरामेरूर, निर्मला एम. गोलेछा-सी.यू.शाह भवन, सुमन जे. संचेती-कांचीपुरम, आशा पी. दुगड़- न्यू वाशरमेनपेठ, पिंकी कोठारी-इरोड, चन्दना बेद-सेदापेठ, स्नेहलता चोरडिया-सी.यू.शाह भवन, नीतू भण्डारी-टी.नगर, सीमा बोथरा-ए.जी.जैन स्कूल, सरला रांका-पैराम्बपूर, रसिला वी. बांठिया-कांचीपुरम, विपुल बोहरा-कोयम्बटूर, नमिता ए. रांका-आवडी, खुशी छाजेड़-अयनावरम्, संगीता श्रीश्रीमाल-ईरोड, हेमलता मेहता-न्यू वाशरमेनपेठ, धीरज पारख- ओल्ड वाशरमेनपेठ, रीना बडोला-कांचीपुरम्।

पुरस्कार प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री नितेश जी बागमार, चेन्नई-09940093434

(4) पोरवाल संभाग (14)- महेन्द्र कुमार जैन-मण्डी रोड, अशुंल जैन-सवाईमाधोपुर शहर, प्रीति जैन- अलीगढ़, अदिति जैन-सवाईमाधोपुर सिटी, सोनाली जैन-मण्डी रोड, तनुप्रिया जैन-बजरिया, सार्थक जैन-सवाईमाधोपुर सिटी, दीपशिखा जैन-अलीगढ़, सुमित जैन-मण्डी रोड, मीनल जैन-अलीगढ़, अलका चोरडिया-कोटा, आर्चि जैन-कोटा, नवीता जैन-चौथ का बरवाड़ा, अलका जैन-चौथ का बरवाड़ा।

पुरस्कार प्राप्ति हेतु सम्पर्क सूत्र- श्री पदमचन्द जी गोटेवाला-94140-30572

रचनाएँ आमन्त्रित

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका हेतु लेखकों का सहयोग निरन्तर प्राप्त हो रहा है। आप जिनवाणी के युवा-स्तम्भ, नारी-स्तम्भ, परिवार-स्तम्भ, बाल-स्तम्भ के साथ नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर भी अपनी मौलिक रचनाएँ प्रेषित कर सकते हैं। रचनाएँ साफ सुथरी एवं प्रवाहमयी भाषा में हों।**-सम्पादक**

सम्पूर्ण भारत से प्रवेशार्थ आवेदन-पत्र आमन्त्रित

आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान में अध्ययन की उत्कृष्ट सुविधा

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर 1008 श्री हस्तीमल जी म.सा. की प्रबल प्रेरणा से सन् 1973 में संस्थापित एवं गजेन्द्र चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा संचालित आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान, जयपुर में नैतिक संस्कारों के साथ आध्यात्मिक शिक्षण प्राप्त करते हुए विद्यालय, महाविद्यालय, प्रोफेशनल एवं प्रशासनिक स्तरीय का उच्च शिक्षण प्राप्त करने के इच्छुक जैन विद्यार्थियों से वर्ष 2014 में संस्थान में प्रवेश हेतु आवेदन आमंत्रित हैं। विगत 39 वर्षों में यहाँ से अध्ययन कर लगभग 120 विद्यार्थी वर्तमान में प्रशासनिक, राजकीय एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में सेवारत हैं।

संस्थान में प्रवेश हेतु प्रक्रिया–

1. कक्षा आठ से उच्च कक्षा उत्तीर्ण विद्यार्थी आवेदन पत्र प्राप्त कर निश्चित तिथि से पूर्व आवेदन पत्र जमा करावें।
2. विद्यालय, महाविद्यालय एवं प्रोफेशनल अध्ययन के साथ प्रशासनिक सेवाओं के प्रतियोगियों के लिए सभी विषयों में आवेदन आमंत्रित है। आर्ट्स (कला संकाय में संस्कृत विषय) लेने वाले विद्यार्थियों को प्रवेश प्रक्रिया में विशेष छूट संभावित है।
3. संस्थान में प्रवेश हेतु विद्यार्थी का शैक्षणिक स्तर पर 58 प्रतिशत एवं उससे अधिक अंक होना, आध्यात्मिक रुचि का होना आवश्यक है। पारिवारिक आय स्तर भी प्राथमिकता रखेगा।
4. प्राप्त आवेदनों में से शैक्षणिक व आध्यात्मिक योग्यतानुसार चयनित छात्र ही प्रवेश हेतु साक्षात्कार में आमंत्रित किये जायेंगे, जिसकी सूचना आवेदनकर्त्ताओं को की जायेगी।

नियम एवं सुविधाएँ–

1. संस्थान में अध्ययनानुकूल उचित आवास एवं भोजन की निःशुल्क व्यवस्था।
2. विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु अँग्रेजी एवं विविध विषयों पर विशेष आमंत्रित महानुभावों द्वारा अभिप्रेरणा एवं कार्यशाला का आयोजन। संस्थान द्वारा भाषण, गायन, वाद-विवाद, गेम शो का समय-समय पर आयोजन।
3. सुसज्जित पुस्तकालय, विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाएँ एवं कम्प्यूटर शिक्षण की उत्तम व्यवस्था।
4. विद्यार्थियों को स्कूल एवं महाविद्यालय के अध्ययन के साथ संस्थान द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन अनिवार्य है।
5. संस्थान द्वारा निर्धारित अन्य नियमों एवं उपनियमों का पालन अनिवार्य।

जो भी विद्यार्थी नैतिक एवं आध्यात्मिक संस्कारों के शिक्षण के साथ विद्यालय, महाविद्यालय, प्रोफेशनल एवं प्रशासनिक स्तर के उच्च शिक्षण हेतु जयपुर में रहकर संस्थान में प्रवेश लेना चाहते हैं, वे दिये गये प्रवेश आवेदन पत्र को भरकर शीघ्र निम्न पते पर प्रेषित करावें- **दिलीप जैन,** ***संयोजक/अधिष्ठाता, आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान, ए-9, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर-302015 (राज.) फोनः 0141-2710946, 094614-56489, ईमेलः-*** *ahassansthan@gmail.com*

आचार्य हस्ती आध्यात्मिक शिक्षण संस्थान

ए-9, महावीर उद्यान पथ, बजाज नगर, जयपुर-302015 (राज.)

फोन: 0141-2710946, 94614-56489 (मोबाइल)

Email-ahassansthan@gmail.com

प्रवेशार्थ आवेदन-पत्र-2014

अपना नवीन फोटो लगायें

1. नाम ....
2. पिता का नाम ....
3. जन्मतिथि ....
4. पत्राचार का पूर्ण पता ....

....

5. मोबाइल नं. .... निवास दूरभाष नम्बर .... ईमेल ....
6. शैक्षणिक योग्यता विवरण (पिछले चार वर्ष का)

कक्षा/डिग्री	संस्थान/कॉलेज	बोर्ड/विश्वविद्यालय	उत्तीर्ण वर्ष	प्राप्तांक/प्रतिशत

7. किस कक्षा/ विषय में प्रवेश ....
8. धार्मिक अध्ययन ....

....

(आ) पारिवारिक विवरण

(1) परिवार के कुल सदस्य............ (2) परिवार का किस धर्म से सम्बन्ध.......................

(3) परिवार में धार्मिक गतिविधियाँ ....

(इ) संस्थान में प्रवेश का उद्देश्य एवं लक्ष्य ....

....

(ई) सम्पर्क सूत्र (स्थानीय श्रावक)

(1) नाम....................................... (2) नाम ....

पता .... पता ....

दूरभाष/ मोबाइल................................ दूरभाष/ मोबाइल ....

(उ) विशिष्ट संदर्भ सूत्र-

नाम .... पता ....

....दूरभाष/ मोबाइल ....

मेरे द्वारा दी गई उक्त जानकारी सत्य है।

आवेदन में दी गई जानकारी के गलत होने पर फार्म निरस्त किया जा सकता है।

अभिभावक हस्ताक्षर छात्र हस्ताक्षर

साभार-प्राप्ति-स्वीकार

1000/- जिनवाणी पत्रिका की 20 वर्षीय आजीवन-सदस्यता हेतु प्रत्येक

क्रम संख्या 15230 से 15239 तक 10 सदस्य बने।

'जिनवाणी' मासिक पत्रिका हेतु साभार प्राप्त

11000/- श्री देवेन्द्र कुमारजी बड़ेर, जयपुर, सुपौत्र युवांश, युग एवं व्योम के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में।

5100/- श्रीमती चंचलकँवरजी धर्मसहायिका स्व. श्री मोहनराजजी भंडारी, जयपुर, अक्टूबर-नवम्बर-2013 में प्रकाशित जिनवाणी विशेषांक हेतु।

5100/- श्री सुरेन्द्रजी, वीरेन्द्रजी, नरेन्द्रजी, गजेन्द्रजी, आदरजी लूँकड़, कोटा, पूज्य मातुश्री श्रीमती शोभादेवीजी धर्मपत्नी स्व. श्री बंशीलालजी लूँकड़ का 06 मार्च, 2014 को स्वर्गवास हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

5100/- श्री उत्तमचन्दजी, राहुल कुमारजी नाहटा, श्री नेमीचन्दजी, अजीतकुमारजी धारीवाल, के.जी.एफ., चि. राकेशजी का शुभ-विवाह सौ.कां. प्रतीक्षाजी के संग 3 मार्च 2014 को सम्पन्न होने पर।

2500/- श्रीमती निर्मलाजी ताराचन्दजी बोथरा, जयपुर, पुत्रवधू श्रीमती प्रमिलाजी बोथरा धर्मसहायिका श्री आशीषजी बोथरा, पौत्रवधू श्रीमती कमलादेवीजी चन्द्रसिंहजी बोथरा के स्वप्निका प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपलक्ष्य में।

2100/- श्री प्रकाशचन्दजी कर्णावट, जयपुर, सुश्राविका श्रीमती कमलादेवीजी धर्मपत्नी स्व. श्री चौथमलजी कर्णावट का 23 जनवरी 2014 को स्वर्गवास हो जाने पर पुण्य स्मृति में।

2100/- श्री गंगाधरजी, हनुमानजी, चन्द्रप्रभुजी, महेन्द्रजी, राजेन्द्रजी, प्रकाशचन्दजी जैन, इन्दौर, श्रीमती रत्नबाईजी धर्मपत्नी श्री गंगाधरजी जैन की पुण्यस्मृति में।

2100/- श्रीमती रतनदेवीजी कर्णावट, जयपुर, स्व. श्री मोतीचन्दजी कर्णावट की पुण्य स्मृति में।

2100/- श्री दलीचन्दजी, किशनलालजी नाहटा, के.जी.एफ., सुपौत्री के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में।

2100/- श्री जम्बूकुमारजी, जशकरणजी, धर्मेन्द्रकुमारजी, जितेन्द्रकुमारजी, विनोदजी, संजयजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा (जिला-टोंक), वैद्य श्री गोपाललाल जी जैन का 24 फरवरी, 2014 को समाधिमरण होने पर पुण्यस्मृति में।

2000/- श्री देवीलालजी पीपाड़ा, आसीन्द-भीलवाड़ा, चि. मनीषजी का शुभ-विवाह सौ. कां. पूजाजी सुपुत्री श्री सुशीलाजी-गौतमचन्दजी डोसी, दूदू निवासी के संग 8 फरवरी 2014 को सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

1111/- श्रीमती कल्याणीजी जैन, महावीरनगर-जयपुर, प्रपौत्र चि. खुशुजी, सुपौत्र श्री दानमलजी-इन्दिराजी जैन, सुपुत्र श्री लोकेशजी-डिम्पलजी जैन के जन्मदिवस 27 फरवरी 2014 के उपलक्ष्य में।

1101/- श्री सौभागमलजी, धर्मचन्दजी, नरेशचन्दजी, सुरेशचंदजी जैन, कुश्तला-सवाईमाधोपुर,

चि. मनीष कुमारजी सुपुत्र श्री नरेश कुमारजी का शुभ-विवाह सौ.कां. मोनिकाजी सुपुत्री श्री राधेश्यामजी (करमोदा वाले), आदर्शनगर-सवाईमाधोपुर के संग सुसम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री चाँदमलजी, महेन्द्र कुमारजी जैन, सुमेरगंज मण्डी, श्रीमती रजनीदेवीजी धर्मपत्नी श्री टीकमचन्दजी जैन की पुण्यस्मृति में।

1100/- श्रीमती मंजुलदेवीजी लूणावत, जयपुर, सुपौत्र चि. रोहितजी का सौ.कां. प्रीतिजी के संग शुभ-विवाह सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

1100/- श्रीमती विद्याजी कोठारी, जयपुर, स्व. शांतिचन्दजी कोठारी की पुण्यस्मृति में।

1100/- श्री सुभाषचन्दजी, अशोक कुमारजी धोका, मैसूर।

1100/- श्री डी.एस. पदमचन्दजी, पी. संजयजी जैन, रामनगरम्।

1100/- श्रीमती राधाजी जैन, जयपुर स्व. धर्मचन्दजी जैन की पुण्य स्मृति में।

1100/- श्री धनरूपचन्दजी, अमितजी मेहता, बेंगलोर।

1100/- श्री बस्तीमलजी, प्रकाशचन्दजी, आकाशजी बाफणा, चेन्नई, स्व. श्रीमती रतनकुँवरजी बाफणा की प्रथम पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में।

1100/- श्री महावीरप्रसादजी, पंकजकुमारजी जैन, मण्डावर-दौसा, सुश्री मालाजी जैन की दिनांक 9 फरवरी 2014 को बैंगलोर में जैन भागवती दीक्षा को सम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ हेतु साभार प्राप्त

15000/- श्री आधारशील, श्री ऋतिककुमारजी चोरडिया, उज्जैन, पुस्तक प्रकाशन में सहयोगार्थ।

2100/- श्री जम्बूकुमारजी, जशकरणजी, धर्मेन्द्रकुमारजी, जितेन्द्रकुमारजी, विनोदजी, संजयजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा (जिला-टोंक), वैद्य श्री गोपाललाल जी जैन का 24 फरवरी, 2014 को समाधिमरण होने की पुण्यस्मृति में।

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल के सत्साहित्य प्रकाशनार्थ अर्थसहयोग

2000/- श्री देवीलालजी पीपाड़ा, आसीन्द-भीलवाड़ा, चि. मनीषजी का शुभ-विवाह सौ. कां. पूजाजी सुपुत्री श्री सुशीलाजी-गौतमचन्दजी डोसी, दूदू निवासी के संग दिनांक 8 फरवरी 2014 को सुसम्पन्न होने के उपलक्ष्य में।

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

(अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद् द्वारा क्रियान्वित)

दानदाता एवं दान एकत्रित करने वालों की सूची

24000/- श्री रंगरूपमल जी चोरडिया, चेन्नई

12000/- डॉ. एल.सी. सिंघवी

12000/- श्री सोहनलाल जी, महावीर जी, अनिल जी, बोथरा, भोपालगढ़

12000/- श्रीमती मधुबाला जी दर्डा, जलगांव

6000/- श्री मांगीलाल जी, राजीव जी, गांधी, भण्डारा (महा.)

छात्रवृत्ति-योजना में इच्छुक दानदाता एक छात्र के लिए 12000/- रु. अथवा उनके गुणक में जितनी छात्रवृत्तियाँ देना चाहें तदनुसार दानराशि 'गजेन्द्र निधि आचार्य श्री हस्ती स्कॉलर शिप फण्ड' योजना के नाम चैक या ड्राफ्ट(Donations to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of IncomeTax Act 1961) से निम्नांकित पते पर भेजने का कष्ट करें- ***श्री अशोक जी कवाड़,*** 33, *Montieth Road, Egmore, Chennai-600008 (Mob. 9381041097)*

भूल सुधार

5100/- जिनवाणी विशेषांक (अक्टूबर-नवम्बर-2013) के पृष्ठ संख्या 409 पर श्री दौलत कुमार जी कोठारी के स्थान पर श्री दौलतजी, अशोकजी एवं सुनील जी भण्डारी (जोधपुर वाले), जयपुर पढ़ा जाए।

1101/- जिनवाणी मार्च-2014 के पृष्ठ संख्या 124 पर श्री राजेशजी जैन, जयपुर, सुश्राविका श्रीमती मिथलेश जी जैन का निधन 01 फरवरी, 2014 को हो जाने पर उनकी पुण्य स्मृति में।

आगामी पर्व

चैत्र शुक्ला 13, रविवार	**13.04.2014**	**भगवान महावीर का 2613 वां जन्म कल्याणक**
चैत्र शुक्ला 14, सोमवार	**14.04.2014**	**चतुर्दशी, पक्खी**
चैत्र शुक्ला 15, मंगलवार	**15.04.2014**	**आयम्बिल ओली पूर्ण**
वैशाख कृष्णा 8, मंगलवार	**22.04.2014**	**अष्टमी**
वैशाख कृष्णा 14, सोमवार	**28.04.2014**	**चतुर्दशी**
वैशाख कृष्णा 30, मंगलवार	**29.04.2014**	**पक्खी**
वैशाख शुक्ला 3, शुक्रवार	**02.05.2014**	**आचार्य भगवन्त हस्तीमल जी म.सा. का 85 वां आचार्य पदारोहण दिवस, अक्षयतृतीया**
वैशाख शुक्ला 8, बुधवार	**07.05.2014**	**आचार्य भगवंत श्री हस्तीमल जी की 23 वीं पुण्यतिथि**
वैशाख शुक्ला 9, गुरुवार	**08.05.2014**	**उपाध्यायप्रवर पं. रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. का 24 वां उपाध्याय पदारोहण दिवस**
वैशाख शुक्ला 13, सोमवार	**12.05.2014**	**उपाध्यायप्रवर पं.रत्न श्री मानचन्द्र जी म.सा. का 52 वां दीक्षा दिवस।**
वैशाख शुक्ला 15, बुधवार	**14.05.2014**	**पक्खी**
ज्येष्ठ कृष्णा 5, सोमवार	**19.05.2014**	**आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. का 24 वां आचार्यपदारोहण दिवस।**

मानवता

श्रीमती रेणु सिरोया

किसी को मिटाकर खुद को बनाया तो क्या गज़ब किया,
किसी को गिराकर खुद को उठाया तो क्या गज़ब किया,
महानता वो है कि किसी के आँसू खुद में समेट ले 'रेनू',
किसी को रुलाकर खुद को हंसाया तो क्या गज़ब किया।।

-सिरोया मेडिकल स्टोर, 213/12, अशोकनगर, उदयपुर-313001 (राज.)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

क्रोध पर विजय प्राप्त करनी हो तो क्षमा धारण करें।

– आचार्यश्री हस्ती

जोधपुर में प्लॉट, मकान, जमीन, फार्म हाउस खरीदने व बेचने हेतु सम्पर्क करें।

पद्मावती

डेवलपर्स एण्ड प्रोपर्टीज

महावीर बोथरा
09828582391

नरेश बोथरा
09414100257

292, सनसिटी हॉस्पिटल के पीछे, पावटा, जोधपुर 342001 (राज.)
फोन नं. : 0291-2556767

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

अंतर में सच्चाई चाहिए और व्यवहार में सफाई चाहिए, वही प्राणी संसार में अपना आत्म हित कर जगत के सामने आदर्श रख सकता है ।

- आचार्य श्री हीरा

C/o CHANANMUL UMEDRAJ
BAGHMAR MOTOR FINANCE
S. SAMPATRAJ FINANCIERS
S. RAJAN FINANCIERS

 # 218, Ashoka Road, Lashkar Mohalla,
Mysore-570001 (Karanataka)

With Best Compliments from :

C. Sohanlal Budhraj Sampathraj Rajan
Abhishek, Rohith, Saurav, Akhilesh Baghmar

Tel. : 821-4265431, 2446407 (O)
Mo. : 9845126407 (B), 9845580407 (S), 9845113334 (R)

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

सामायिक वह महती साधना है, जिसके द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्म-मल को नष्ट किया जा सकता है।

BALAJI AUTOS

(Mahindra & Mahindra Dealers)
618, 619, Old No. 224, C.T.H. Road
Padi, Mannurpet, Chennai - 600050
Phone : 044-26245855/56

BALAJI HONDA

(Honda Two Wheelers Dealers)
570, T.H. Road, Old Washermenpet, Chennai - 600021
Phone : 044-45985577/88
Mobile : 9940051841, 9444068666

BALAJI MOTORS

(Royal Enfield Dealers)
138, T.H. Road, Tondiarpet, Chennai - 600081
Maturachaiya Shelters,
Annanagar
Mobile : 9884219949

BHAGWAN CARS

Chennai - 600053
Phone : 044-26243455/66

With Best Compliments from :

Parasmal Suresh Kumar Kothari

Dhapi Nivas, 23, Vadamalai Street,
Sowcarpet, Chennai - 600079
Phone : 044-25294466/25292727

Gurudev

SURANA™

yes, the best TMT RE-BARS

DRI Plant

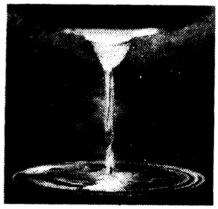

Electric Arc Furnace

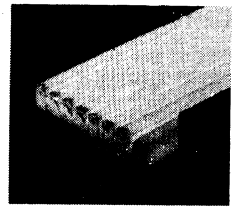

Billets

Rolling Mill

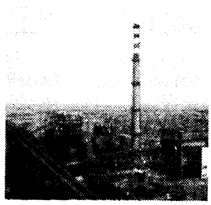

Captive Power Plant

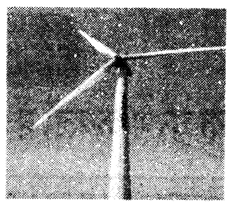

Windmill

With best wishes from

ISO 9001-2008

SURANA INDUSTRIES LIMITED

INTEGRATED STEEL PLANT

MANUFACTURE OF TMT BARS AND ALL KIND OF ALLOY STEEL

29, Whites Road, II Floor, Royapettah, Chennai 600 014/ Ph : 044-28525127 (3 lines) 28525596. Fax: 044-28521143

Email: steelmktg@suranaind.com / www.surana.org.in

STEEL I POWER I MINING

।। श्री महावीराय नम: ।।

हस्ती-हीरा जय जय ! हीरा-मान जय जय !

छोटा सा नियम धोवन का।
लाभ बड़ा इसके पालन का।।

अखण्ड बाल ब्रह्मचारी चारित्र चूड़ामणि, भक्तों के भगवान् 1008
श्री हस्तीमल जी म.सा. के चरणों में हृदय की असीम आस्था से समर्पण
उनके अनमोल खजाने के हीरे-मोती जन-जन के तारणहार
पूज्य आचार्य प्रवर 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा.,
पण्डित रत्न उपाध्याय प्रवर श्री मानचन्द्रजी म.सा.
एवं समस्त
रत्नाधिक साधु साध्वी मण्डल
के चरण कमलों में भावभरा कोटिश: वन्दन एवं समर्पण...

OUR HUMBLE SALUTATIONS TO THE MOST NOBLE SOULS

PRITHIVIRAJ PREM KUMAR KAVAD
690, Trunk Road, Poonamallee, Chennai - 600 056
Ph. 044-26272196 Mob. : 93810-07273

MANGILAL HARISH KUMAR KAVAD
GURU HASTI THANGA MAALIGAI
(JEWELLERS & BANKERS)
5, Car Street, Poonamallee, Chennai-600 056
Ph. : 044-26272609 Mob. : 95-00-11-44-55

जयगुरु हस्ती जयगुरु हीरा जयगुरु मान

प्यास बुझाये, कर्म कटाये
फिर क्यों न अपनायें
धोवन पानी

Narendra Hirawat & Co.

Flat No. 1, Building No. 2, Navjeevan Society,
Senapati Bapat Marg, Matunga (West), MUMBAI-400 016

Trin-Trin

Matunga Office : 022-24370713, 24380713, 66669707
Opera House Office : 022-23669818
Mobile : 09821040899

गजेन्द्र निधि द्वारा संचालित

आचार्य हस्ती मेधावी छात्रवृत्ति योजना

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न युवक परिषद्

आदरणीय रत्नबंधुवर,

रत्न संघ के अष्टम पट्टधर परम पूज्य आचार्य भगवंत 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा., पंडितरत्न उपाध्यायप्रवर श्री मानचन्द्र जी म.सा. एवं संत-सतीमण्डल की असीम कृपा तथा रत्नसंघ के संघनिष्ठ गुरु भक्तों के पूर्ण सहयोग से गत सात वर्षों से मेधावी छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक उन्नति एवं नैतिक व आध्यात्मिक जीवन में अभिवृद्धि करने के लिए छात्रवृत्ति योजना चल रही है। संघ द्वारा इस योजना का विस्तार कर दिया गया है।

निवेदन है कि अपने परिवार में आई खुशियों को मूर्त रूप देने के लिए छात्रवृत्ति योजना में रुपये 3000/-, 6000/- व 9000/- का अर्थ सहयोग करके दिवस विशेषों को चिरस्थायी बनायें एवं पुण्य कमायें।

आचार्यप्रवर पूज्य श्री 1008 श्री हीराचन्द्र जी म.सा. एवं पण्डितरत्न उपाध्याय श्री मानचन्द्र जी म.सा. के दीक्षा अर्द्धशती वर्ष के शुभ अवसर पर छात्रवृत्ति योजना में 50,000/- रुपये या एक छात्र के लिए 12000/- रुपये अथवा उनके गुणक में छात्रवृत्ति राशि का अतिशीघ्र अर्थ सहयोग करावें।

ज्ञान का एक दीया जलाइये, सहयोग के लिए आगे आइए
दीक्षा अर्द्धशती वर्ष में लाभ उठाकर आनन्द पाइये

इस योजना में जो गुरुभक्त अर्थ सहयोग करना चाहते हैं, वे चैक, ड्राफ्ट या नकद राशि जमा करा सकते हैं या भेज सकते हैं। कोष का खाता विवरण इस प्रकार है-

A/c Name- Gajendra Nidhi Acharya Hasti Scholarship Fund
A/c No. 168010100120722
Bank Name & Address- AXIS Bank LTD. Anna Salai, Chennai(T.N.) IFSC Code- UTIB0000168
PAN No.- AAATG1995J
Note- Donation to Gajendra Nidhi are exempted u/s 80G of Income Tax Act 1961.

सहयोग के लिए चैक या ड्राफ्ट कार्यालय के इस पते पर भेजें-

B.Budhmal Bohra
No.-53, Erullappan street, Sowcarpet, Chennai-600079 (T.N.), Telefax No.- 044-42728476

अधिक जानकारी एवं सहयोग करने के लिए सम्पर्क करें-

Name	Place	Contact No.	Name	Place	Contact No.
Ashok Kavad	Chennai	9381041097	Sumtichand Mehta	Pipar	9414462729
Budhmal Bohra	Chennai	9444235065	Manoj Kankaria	Jodhpur	9414563597
Praveen Karnaavat	Mumbai	9821055932	Kushalchand Jain	Sawai Madhopur	9460441570
Mahendra Bafna	Jalgaon	9422773411	Rajkumar Golecha	Pali	9829020742
Ravindra Jain	Sawai Madhopur	9413401835	Harish Kavad	Chennai	9500114455
Suresh Chordia	Chennai	9444028841	Jitendra Daga	Jaipur	9829011589
Vikram Bagmar	Chennai	9841090292	Sheryansh Mehta	Jodhpur	9799506999

जय गुरु हस्ती

जय गुरु हीरा | जय गुरु मान

अगर व्यक्ति प्रभु के मार्ग पर चले तो कहीं भी अशान्ति नहीं हो सकती।
- आचार्य श्री हीरा

सांखला परिवार की ओर से निवेदन

हम :

चौबीसों तीर्थंकरों के चरण
कमलों पर मस्तक रखते हैं
और
विनम्रता तथा गौरव के साथ
जाहिर करते हैं कि
"जिनवाणी" के
उत्कर्षदायी तथा पुण्यात्मक कार्यों में
हमारा सहर्ष
सदैव सहकार रहेगा।

मदन मोहन सांखला,
सौ. हेमलता मदन सांखला
मेहुल मदन सांखला
सौ. प्रणिता मेहुल सांखला और
बेबी बुणम मेहुल सांखला

MAXHEAL Group of Companies

Jai Guru Hasti

Jai Guru Heera *Jai Guru Maan*

शाश्वत सुख के लिए प्रतिपल प्रयत्न करने वाले जीव मुमुक्षु कहलाते हैं। ये जीव साधक भी हो सकते हैं और श्रावक भी ।

- आचार्य श्री हीरा

BHANSALI GROUP

Dhanpatraj V. Bhansali

BHANSALI DEVELOPERS

Sharda Bhawan, 2nd Floor, Nandapatkar Road,
Vile Parle (E), Mumbai - 400 057
Tel. : (O) 26185801 / 32940462
E-MAIL : bhansalidevelopers@yahoo.com

JAI GURU HASTI JAI GURU HEERA JAI GURU MAAN

प्यास बुझाये, कर्म कटाये
फिर क्यों न अपनायें
धोवन पानी

With best compliments from

SOHANLAL UMEDRAJ SURENDER HUNDIWAL

S.UMEDRAJ JAIN (HUNDIWAL)
098407 18382
2027 'H' BLOCK 4th STREET,12TH MAIN ROAD,
ANNA NAGAR, CHENNAI-600040
044-32550532

BRANCHES

APPOLO BRIGHT STEELS PVT LTD.
S.P.59, 3 rd MAINROAD
AMBATTUR ESTATE CHENNAI-600058
044-26258734, 9840716053, 98407 16056
FAX: 044-26257269
E-MAIL: appolobright@yahoo.com

APPOLO CORRUGATORS PVT LTD.
NO.400 NORTH PHASE, SIDCO INDUSTRIAL ESTATE,
AMBATTUR CHENNAI-60098
FAX: 044-26253903, 9840716054
E-MAIL:appolocorrugators@yahoo.com

आर.एन.आई. नं. 3653/57 डाक पंजीयन संख्या RJ/JPC/M-21/2012-14
मुद्रण तिथि दिनांक 5 से 8 अप्रेल, 2014
वर्ष : 72 ★ अंक : 04 ★ मूल्य : 10 रु.
डाक प्रेषण तिथि 10 अप्रेल, 2014 ★ चैत्र, 2071

।।जय गुरु हीरा।। ।।जय गुरु मान।।

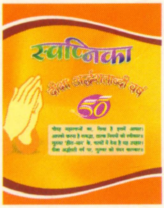

स्वप्निका

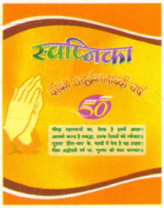

के प्रथम तीन विजेता

प्रथम विजेता

श्रीमती प्रमिलाजी बोथरा धर्मपत्नी श्री आशीषजी बोथरा, पुत्रवधू श्रीमती निर्मलाजी - श्री ताराचंदजी बोथरा, पौत्रवधू स्व. श्रीमती कमलादेवीजी - चन्द्रसिंहजी बोथरा, जयपुर ने अखिल भारतीय स्तर पर 'स्वप्निका' मुख्य लिखित परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। पूर्व में आपने स्वप्निका खुली पुस्तक परीक्षा में भी दूसरा स्थान प्राप्त किया था। आप कक्षा पाँच तक आ. शिक्षण बोर्ड की धार्मिक परीक्षा उत्तीर्ण हैं। बचपन से ही पारिवारिक सुसंस्कारों के कारण धार्मिक अध्ययन की आपमें विशेष रुचि रही है। आप और आपका परिवार संत-सती सेवा और संघ की सभी गतिविधियों में सदैव सक्रिय रहता है।

द्वितीय विजेता

सुश्री रिंकीजी जैन, अलीगढ़-रामपुरा, श्रीमती मंजूदेवीजी - श्री कमलेशजी जैन की सुपुत्री हैं। गुरुभक्ति में अग्रणी, संत सेवा, संघ-सेवा में सदैव तत्पर, वरिष्ठ स्वाध्यायी हैं । आपके कुशल नेतृत्व में अलीगढ़ में प्रतिदिन बच्चों की सायंकालीन धार्मिक पाठशाला चलती है, जिसमें 100-115 की उपस्थिति रहती है।

तृतीय विजेता

श्रीमती प्रतिभाजी जैन धर्मपत्नी श्री सुधीरजी जैन, जयपुर, स्व. श्रीमती पुष्पादेवीजी - श्री भरतजी जैन की पुत्रवधू हैं। राजकीय सेवा में कनिष्ठ लिपिक के पद पर कार्यरत होते हुए भी आपकी धार्मिक रुचि प्रशंसनीय है। आपने आ.शिक्षण बोर्ड, जोधपुर की सभी परीक्षाओं में 95% से भी अधिक अंक प्राप्त किये हैं। पूज्या महासती श्री रुचिता जी म.सा. के सन् 2013 के जयपुर चातुर्मास में आपने प्रतिक्रमण व उत्तराध्ययन सूत्र का 29वाँ अध्ययन कंठस्थ किया है।

विज्ञापन सौजन्य : कल्पतरू ग्रुप

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक - विनय चन्द डागा द्वारा दी डामयण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जौहरी बाजार, जयपुर से मुद्रित व सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर - 302003 से प्रकाशित । सम्पादक - डॉ. धर्मचन्द जैन